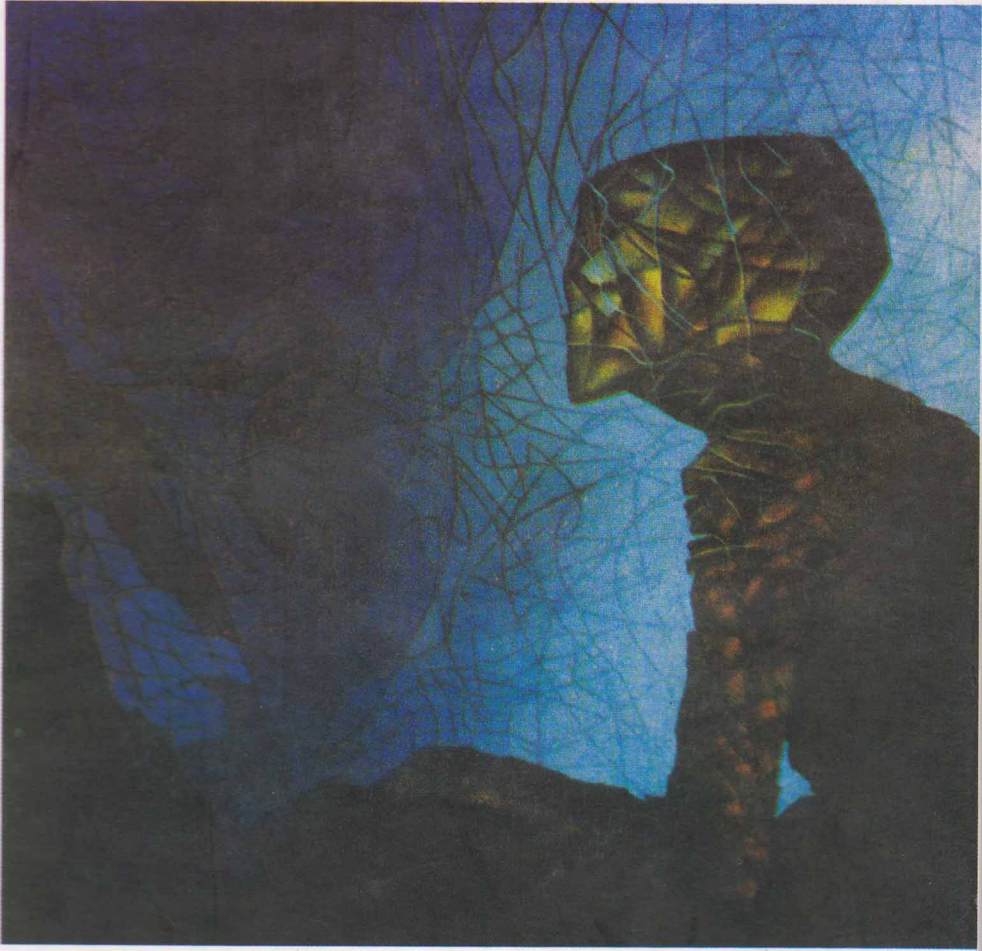


# आधुनिक महिला लेखन (कविता)

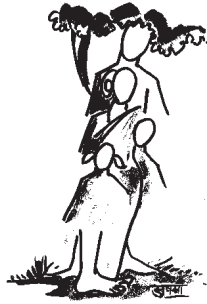


सम्पादन

रमणिका गुप्ता

हिन्दी की समकालीन कविता के उन्नयन एवं विकास में महिला कवियत्रियों की प्रमुख भूमिका रही है। आजादी के बाद जितने काव्य आंदोलन हुए हैं उनमें महिला कवियत्रियों ने अपनी कविताओं द्वारा कई नये प्रयोग एवं अभिव्यंजनाएं प्रस्तुत की हैं। इस संकलन में कुछ ऐसी कवियत्रियों की कविताएं प्रस्तुत की जा रही हैं जिन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इन कविताओं में मानव मन की विभिन्न मनःस्थितियों की प्राजल अभिव्यक्तियां हैं। नारी लेखन के क्षेत्र में इस कविता संकलन को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त होगा ऐसा विश्वास है।

इस संकलन में संकलित पहचानी और नयी कवियत्रियाँ हैं : इन्दु जैन, राजी सेठ, ग्रेस कुजूर, मणिका मोहिणी, सुषम बेदी, रमणिका गुप्ता, शशि सहगल, अमरजीत कौर रानीमान, अनुभूति चतुर्वेदी, हेमलता, मंजु गुप्ता, शैल प्रिया, अर्चना चतुर्वेदी, चम्पा वैद आदि।



आधुनिक महिला लेखन

---

(कविता)

# आधुनिक महिला लेखन

(कविता)

सम्पादन  
रमणिका गुप्ता

शिल्पायन  
पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स  
दिल्ली-110032

ISBN 978-93-81610-14-5

© रमणिका फाउण्डेशन

प्रकाशक

शिल्पायन

पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क,  
शाहदरा, दिल्ली-110032

दूरभाष : 011-22326078

email : shilpayan2005@yahoo.co.in

मूल्य

375.00

संस्करण

2012

आवरण-सज्जा

उमेश शर्मा

शब्द-संयोजन

उमेश लेजर प्रिंटर्स, दिल्ली

मुद्रक

रुचिका प्रिण्टर्स, दिल्ली-32

ADHUNIK MAHILA LEKHAN (Kavita)  
Edited by Ramnika Gupta

## अनुक्रम

सुमति अय्यर	25
इन्दु जैन	31
ग्रेस कुजूर	41
शशि सहगल	51
अमरजीत कौर रानीमान	56
अनुभूति चतुर्वेदी	64
माया प्रसाद	70
हेमलता	76
कल्पना सिंह	79
मीना भारती	83
मंजु गुप्ता	84
शैलप्रिया	87
अर्चना चतुर्वेदी	90
कविता सिंह	96
चम्पा वैद	100
मणिका मोहिनी	103
राजी सेठ	108
सुषम बेदी	111
नीरा परमार	117
सुशीला टाकभौरे	124
डॉ. अन्नापूर्ण श्रीवास्तव	132
कात्यायनी	135

मधु शर्मा	147
डॉ. रेखा व्यास	151
वन्दना सालोड़े	156
रमणिका गुप्ता	160
सावित्री राजीवन	170
श्रीमती मीरा ठाकुर	177
इशिगाकी रिन	181

## संपादकीय

महिला केन्द्रित संग्रह निकालने के पीछे एक मान्यता ये है कि महिलाएँ साहित्य के हर क्षेत्र में सक्षम रूप से हस्तक्षेप कर रही हैं। वे अपने भोगे हुए सच पर ही नहीं, जिसे वह अधिक विश्वसनीयता से अभिव्यक्त करती हैं, बल्कि दूसरे विषयों पर भी उसी विश्वसनीयता से लिखती हैं। जब औरत भोगा हुआ सच लिखती है तो उसमें एक अनुभूति की प्रामाणिकता (आथेन्टीसिटी) आती है, पुरुष जब लिखता है तो वह हमदर्दी का लेखन है। वह कल्पना का सहारा लेता है, पर अनुभूति, ईमानदारी और सच्चाई भोगे हुए सच में होती है। वह अच्छा न भी लिखे पर उसमें जीवन्तता होगी। 'भनिति भदेस' तुलसीदास ने कहा, मेरी अभिव्यक्ति गंवार है लेकिन 'वस्तु मल वर्णी श्रेष्ठ' है।

दरअसल 'घर' के बारे में जो यह धारणा है कि वह त्याग की जगह है, इस पर दबाव पड़ रहा है। अब 'घर' औरत के लिए एक बन्दिश, एक कैद की तरह लगने लगा है, जो पहले स्वर्ग समझा जाता था। संवेदनशील नारी उन पाबंदियों को मानने के लिए तैयार नहीं, चूँकि वह आपसी समझदारी में जीना चाहती है। वह भी चाहती है कि सब उस पर भरोसा करें जैसे वह खुद भरोसा करती रही है सदियों से, नहीं तो वह भी भरोसा करने को तैयार नहीं। वह समान मानसिकता की अपेक्षा करती है। अब घर सुख का, शान्ति, स्वतंत्रता का प्रतीक नहीं रहा बल्कि मंजु गुप्ता के शब्दों में 'प्रतिभा का मकबरा; बन गया है। कोई अच्छा समझे या बुरा, भावात्मक दबाव से घर का एक पुनर्मूल्यांकन होने लगा है। वह जेल-खूँटा-बूचड़खाना मालूम पड़ता है तो इससे नारी चेतना के एक नये

पहलू का अहसास होना चाहिए।

दूसरा अंतरंग सम्बन्धों में जब असमंजस होता है, विषम मानसिकता के कारण या विषम दैहिक अवस्था के कारण, तो अब यह संभव नहीं कि पुरुष औरत को गाली देकर, बदनाम करके या कुल्टा कहकर बच जाय। स्त्री भी उसका असली चेहरा उजागर करने को तैयार है। ध्यान देने की बात यह है कि स्त्री इतनी समझदार भी हो गई है कि वह असमंजस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी करती है। यह अनुभव करती है कि दोनों पक्षों में पहले से जो सपने रहे उनके कारण सामंजस्य नहीं हो पा रहा। यथार्थ ठीक भी हो तो सपनों के अवास्तविक स्वरूप के कारण मन में कचोटता हुआ अहसास जो होता रहता है उससे फाँक या दरार पैदा हो जाती है। यह एक नई नारी की ऐसी जागरूकता है जो यथार्थ की गहरी तह में रची हुई मानसिकता का पर्यवेक्षण करने के साथ-साथ उसका विश्लेषण भी करती है। तीसरे यह लक्ष्य करना जरूरी है कि प्रबुद्ध नारियाँ जिन समस्याओं का उल्लेख करती हैं वे अधिकतर सांस्कृतिक संदर्भ की हैं गो कि उनके कारण जीवन यथार्थ प्रभावित होता ही है। अभी यह प्रबुद्ध नारियाँ व्यापक संदर्भ की मेहनतकश और कामगार नारियों की आर्थिक, सामाजिक और इनसे भी गहरे यौन शोषण की समस्याओं के सम्बन्ध में भी अपनी रचनाओं में भरपूर संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति करने की राह में हैं। सुशीला टाकभौरे ने इस दिशा में कुछ शुरुआत की है। विशेष रूप में देखना रोचक है कि इस संग्रह की कविताओं की अन्तर्वस्तु में नारी की चेतना चुक नहीं जाती। वह चेतना इन कविताओं की बनावट के बारीक पक्षों में भी प्रतिबिम्बित होती है। प्रायः सभी कवयित्रियों ने विशिष्ट नारी संदर्भों से जुड़े हुए बिम्बों का प्रयोग किया है।

जहाँ इन्दु जैन लड़की को ललकारती हैं और गिलहरी की फुर्ती से पेड़ पर चढ़ने को प्रेरित करती हैं। उसे याद दिलाती हैं कि वह कद में पेड़ से बड़ी है, वहीं वह मुक्त लड़की की तेजस्विता से इतनी आश्वस्त हैं कि वह कहती हैं 'ये लड़की/ हालात को हादसे में बदलने नहीं देगी/ उम्मीद को बंजर जमीन पर नहीं छिटकाया है मैंने।' ग्रेस कुजूर 'बौना संसार' में एक तरफ आदमी को उसके बौनेपन का अहसास दिलाती हैं तो इराक के युद्ध की विभीषिका के खिलाफ अमन के परिन्दों का आह्वान

भी करती हैं जो उनके लिए 'मीठे खजूरों की गुच्छियाँ' लाएँ। वह छोटानागपुर में ध्वंस होती आदिवासी संस्कृति, बारूद से उड़ते पहाड़ों के दर्द को महसूसती हैं। वह अयोध्या में 'और अचानक भर-भराकर/ इतिहास एकबार फिर/ सूने पृष्ठों की तरह पसराया धरती पर' तो खुदाई में एक दूसरे से गुँथे कंकाल निकले जो राम और रहीम की पहचान मिटा देते हैं।

शशि सहगल माँ का दर्द उजागर करती हैं, जब वह 'बेटा' कविता में कहती हैं 'और आज जब / बाप का जूता पहना है उसने / उद्विग्न-सी घूम रही हूँ मैं/ खुशी होने की जगह/सहम गयी हूँ मैं बदलाव देखकर'। वह आज के धार्मिक उन्माद पर जोरदार चोट करती है, जब वह कहती हैं 'अभी तक पढ़े सभी वाद सिद्धान्त/ हाथों में छुरे लिये/खुद को बड़ा साबित करने की / कोशिश में हैं। ...चौंक उठी मैं/ऊपर देखा धर्मग्रन्थ जहर उगल रहा था।' अमरजीत कौर रानी-मान जहाँ 'बच्ची जिसे हरना है शताब्दी का दर्द बनकर एक औरत' और 'दिन भर अथक परिश्रम से / जुटाया भोजन / रात को थाली में परोसती हूँ/ अकस्मात्/ तुम्हारे चेहरे की शान्त लकीरें पारा बनकर गिरती हैं थाली में / मक्खियों की तरह'।

अनुभूति चतुर्वेदी दो श्रावणी कविताओं में सूर्य का आह्वान करती हैं, प्रेम से नहला देने के लिए, और उस रोशनी के स्वप्न-शिशु की लालसा भी पालती हैं, तो आम आदमी के अस्तित्व को, जीवन्तता को साकार करती हुई कहती है 'कितने मजबूत हैं वे हाथ / जो बनाते हैं सड़कें, राजपथ।

माया प्रसाद गांधारी, द्रौपदी, उत्तरा से लेकर आज तक की औरत के कठपुतलीनुमा अस्तित्व पर बिसूरती हैं तो 'तीसरी कोंपल कथा' में तीसरी बेटे के जन्म पर 'निचुड़ी हुई माँ / कुछ और निचुड़ गयी' कहकर पूरे समाज को कटघरे में खड़ा कर देती हैं।

हेमलता की दादी से पोती तक की कविता एक मुक्त होती औरत की सोच की द्योतक है। निषेधों से मुक्त हुई पोती अब अच्छी लड़की कहलाने लगती है, चूँकि दादी के प्रश्न चिन्ह उसकी माँ का पीछा छोड़ चुके होते हैं।

कल्पना सिंह ने भी लड़कियों को मनुष्य न माने जाने की, उन्हें

अभिशप्त करार दिये जाने की पीड़ा को चिह्नित किया है, तो मीना भारती ने एक गरीब माँ की विवशता का चित्रण किया है। मंजु गुप्ता ने तो बेटे के जन्म पर शोक मनाये जाने और बड़ा होने पर उसे जलाये जाने से दुःखी हो बन्धत्व का ही वर माँग लिया है।

'आओ हम फिर से शुरू करें/ आजादी के गीत/ कि हमारी चोंच पर पहरा है / बहेलिए के जाल का/ आओ हम बन्धक पंखों को झटका कर / मोर की तरह नाचें,' कहती हुई शैलप्रिया, नारी चेतना की मुहिम को अनुप्राणित करती हैं। अर्चना चतुर्वेदी की कविताओं में 'एकाकीपन' और 'थकान' के बावजूद जिन्दगी की चाहत है लगाव है, जुड़ाव है। वह रुकती नहीं 'मुझे लगता है। सड़कें ठहरी हुई हैं/ मैं चल रही हूँ। एकाकिनी / निरुद्देश्य/ अहिर्निश।' 'थकान' में उनकी आवाज दीवारों को लाँघ नहीं पाती पर फिर भी वह 'दूसरा चन्द्रमा' ढूँढ़ने को तैयार नहीं, चूँकि इन्हें विश्वास है 'तुम आओगे शताब्दियाँ उलीचते हुए', इतना गहरा विश्वास इतनी सुदृढ़ आशा, अर्चना की ऊर्जा और संकल्प का द्योतक है। कविता सिंह ने गीतों और कविताओं में बिलकुल नये प्रयोग किये हैं। 'भैले कपड़े-सा खूटी पर टँगा दिन' 'अहिंसा का सूखा चना/ भिगोया मैंने' जैसे शब्दचित्र आज की जिन्दगी के बिलकुल आस-पास के घरेलू बिम्ब हैं। वह कहती हैं, 'बढ़ती महंगाई के नस-नस में / जहर उतार रही...हर पत्तल पर लगती डर की / कड़वी झोर-बँटी' विषमताओं की मार को अन्तर में उतारने वाली अपने अन्दाज की उपमाएँ हैं। इनकी कविता सहज संप्रेषणीय हो जाती है। चम्पा वैद की कविताओं में भी रोजमर्रा के प्रतीक हैं। 'खरबूजे की फांक-सा', 'गाय के खुर-सा' चाँद। कविता उनके अन्तर में 'मेंढक-सी' फुदकती है।

मणिका मोहिनी का 'पुत्र' कहता है 'देखो माँ! मैं कितना ऊपर हूँ/ मैं ही ईश्वर हूँ' और फिर जब वह आँख खोलती है तो देखती हैं 'वह एक सीढ़ी और चढ़ गया है/ तथा मेरे हाथ/ उसी की ओर उठे हुए हैं'/ पति के बाद पुत्र शासक बन जाता है और माँ उसके अधीन। राजी सेठ की कविता 'प्रवासी बेटे की वर्षगांठ पर' माँ की कथा है तो उनकी 'लोथों के जंगल लांघ कर' आज की त्रासदी का चित्रण है, जब युद्ध और युद्ध भविष्य का रास्ता लोथों के जंगल से रोक रहे हैं।



सुषम बेदी की कविताएँ विदेशों में बसे भारतीय प्रवासियों की दो समानान्तर जिन्दगियों में बैठी मानसिकता को उजागर करती हैं। 'भारतीयता जैसे कोई अनाथ बालक हो', 'किसी धाय की खोज में' या 'कोई बदनाम औरत हो एक नाम की खोज में' एक तरफ फैशन, डिजाइन दूसरी तरफ भारतीयता। 'कविता' बहुत ही संवेदनशील रचना है 'अगर सच से तुम्हें डर न लगता हो / तो मेरा छूना/ तुम्हें मुक्ति देगा'।

नीरा परमार ने जहाँ औरत, लड़की, गृहिणी के चित्र खींचे हैं अपनी कविताओं में वहीं उन्होंने हेन्देगढ़ा की घटना को आधार बनाकर मध्ययुगीन मानसिकता का भी पूरा चित्रण किया है। उनकी कविता विद्रोह करने पर मजबूर करती है। रिक्शा वाले के दर्द को भी वह महसूसती हैं और मजदूर की मजबूरी को भी। सुशीला टाकभौरे ने जहाँ महिलाओं की त्रासदी पर लिखा है वहीं दलित चेतना को भी जगाया है पर वह नारी को इनके खिलाफ लड़ने को प्रेरित करती हैं। इसलिए वह कहती हैं, लोग/ भूकम्प की बात/ सहज मानते हैं/ स्त्री / ज्वालामुखी हो सकती है/ यह भी तो सहज बात है।'

अन्नपूर्णा श्रीवास्तव गाँवों से शहरों की ओर दौड़ने पर चिन्तित हैं। 'गाँव और शहर के बीच का पुल/ बहता जा रहा है। एक बूढ़ा पेड़/इसकी शिनाख्त करता है।'

कात्यायनी की कविता में उनके अनुरूप ही विद्रोही तेवर का सटीक कथ्य है। 'न कोई संस्मरण' में कात्यायनी लिखने के लिये विषय की खोज में कई विकल्पों का जिक्र करती हैं। एक-दूसरे पर संस्मरण लिखने वाले दिग्गजों व युवा पीढ़ी के कलावंतों से अधिक उनके लिये 'अहमियत रखता है/ जीना।' इसलिए वह नहीं लिखेंगी यह सब। धारा के विरुद्ध तैरने वालों को कहाँ फुरसत मिलती है संस्मरण लिखने की। कात्यायनी ने यहाँ एक्टिविस्ट लेखकों और बुद्धिविलासियों का अन्तर स्पष्ट किया है।

मधु शर्मा की शमशेर से प्रेरित होकर लिखी दो रचनाएँ हैं। 'और यों/ आग और पानी का खेल खेलती/ बर्फ हुई औरत / अपना सफर तय करती है/ दूसरों के लिये' औरत के त्याग और व्यथा की कथा है। रेखा व्यास की 'तनया' 'मां शायद मैं / लड़के की चाह में पैदा हुई अनचाही उम्मीद हूँ।'

अपराधबोध से ग्रस्त एक लड़की है जो माँ से प्रश्न करती है। वन्दना सालोड़े की औरत नदी-सी है। 'कितने दिन' कविता में उनके क्षणों का चित्रण है जब स्त्री पुरुष के बीच आपसी रिश्ते खत्म हो जाते हैं। 'एक कमरे के ही भीतर / उग आया था पहाड़।' तनाव साक्षात् पहाड़ सा सामने आ खड़ा होता है।

हमने मलयालम कवयित्री सावित्री राजीवन की अनुवादित कविताएँ भी दी हैं, घरेलू प्रतीकों में लिखी गयी यह कविताएँ कितनी सटीक हैं उसकी बानगी देखिये 'यंत्र सी हूँ कभी एक भौंकती कुत्ती / जो काटना बिसर गयी है/ चींटी और मधुमक्खी की बानगी/ दिखाकर/ मैंने बच्चों को सिखाया था/ कि छोटे भी बड़ों का मालिक बन सकते हैं।' असम की मीरा ठाकुर एक जानी-मानी कवयित्री हैं। जहाँ वह 'मनुष्य खोजती फिर रही हूँ मनुष्य के लिए / और नदी के लिए नदी', वहीं वह पूछती हैं 'सूरज से कहाँ छिपा कर रखा है धूप को / धूप से निकले पसीने को', 'कबूतर' और 'तब' में प्रकृति का मानवीकरण अद्भुत है।

जापान की इशिगाकी रिन की दो कविताएँ हैं। एक मजदूर का जो बिल्डिंग निर्माण का काम करते हुए ऊपर से गिर कर मर जाता है। दूसरी कड़ाही, बटलोही और अंगीठी जैसे उपकरणों से जुड़ी औरत की। औरत की त्रासदी विश्व भर में एक ही जैसी है। जापान की औरत भी विश्व की अन्य औरतों की तरह सबको खाना परोसती है, पकाती है, पर वह स्वादीले गोश्त बनाने में माहिर है, वैसे ही अर्थशास्त्र और राजनीति में भी माहिर होगी। अपने लिए नहीं, ज्ञानदान के लिए। माँ ही सबसे बड़ी गुरु होती है न।

इस संग्रह में प्रतिष्ठित एवं नयी कवयित्रियों का समावेश किया गया है। जहाँ एक तरफ छोटानागपुर के जंगलों से जुड़ी लेखिकाएँ हैं, वहीं दिल्ली जैसे शहरों की मध्यवर्गीय घुटन को झेलती लेखिकाएँ भी हैं। छूट तो बहुत सी लेखिकाएँ गई होंगी। उसके लिए समय तथा साधन जैसी अन्य बाधाएँ सामने हैं।



## नारी द्वारा नारी-चेतना की अभिव्यक्ति

डॉ. नागेश्वर लाल

निराला ने जब लिखा था मैंने 'मैं' शैली अपनाई तो यह भी लिखा था 'देखा दुःखी एक निज भाई'। जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में मनु के माध्यम से कुछ इसी तरह का विचार, गो कि थोड़े अप्रत्यक्ष ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा था कि 'चेतना-समुद्र में जीवन लहरों-सा बिखर पड़ा है', जैसे हर लहर की कुछ 'व्यक्तिगत छाप' है। आधुनिकता की यह चेतना 'मैं' के वैशिष्ट्य के साथ समष्टि के व्यापक सन्दर्भ से लगाव के अहसास से सन्तुलित मालूम पड़ती है। बाद में सन्तुलन कमजोर पड़ा और कविता में या तो 'मैं' का अतिरेक हुआ था समष्टि का। अन्ततः वह परिणित हुई कि दोनों की अनदेखी करते हुए बिचली अस्मिताओं का जोरदार आग्रह होने लगा। पहले वर्ग की चेतना प्रचलित हुई और उसके सहारे मनुष्य को न व्यक्ति के रूप में देखा गया, न व्यापक समष्टि के रूप में उसको भीतर से बाँटते हुए द्वन्द्व को मान्यता दी गई। अब स्थिति यह है कि कोई व्यापक मानव-बोध तो नहीं ही रहा, वर्ग-बोध भी धुँधला पड़ने लगा। आखिर कालों पर, दलितों पर, पिछड़ों पर जो जोर दिया जा रहा है, उसकी कौन सी कैफियत हो सकती है? पहले जो द्वन्द्व वर्ग के आधार पर था और जिसके पक्ष में शोषण की अपनी अकाट्य दलील भी थी वह छोटे-छोटे ऐसे दायरों में सिकुड़ता गया जो विवेकपूर्ण कतई नहीं मालूम पड़ते। कालों और गोरों के, दलितों और द्विजों के तथा पिछड़ों और अगड़ों के द्वन्द्व के साथ अब पुरुषों और स्त्रियों के द्वन्द्व का चित्र भी उभरने लगा है। यह विकेन्द्रीकरण यदि उत्तर आधुनिकता के अन्तर्गत है तो मानना होगा कि अपने यहाँ आधुनिकता के व्यापक प्रसार के पहले ही, मानव-गरिमा की पूरी मान्यता के पहले ही, झाड़ू देनेवाले और कलम चलाने वाले की समता के बोध के पहले ही, उसके अन्त की शुरुआत हो

रही है।

आधुनिकता के उन्मेष के अवसर पर ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था 'नारि नर सम होंहि'। यह उल्लेख अनावश्यक है कि अनेक पुरुषों ने, और उनमें पुनर्जागरण के सूत्रधार ही नहीं थे कवि और लेखक भी थे नारी की विषम स्थिति के संबंध में गहरी संवेदनशीलता दिखलायी थी और उस स्थिति को बदलने के लिए उनसे जो कुछ संभव हुआ, किया था। इधर तो कुछ वर्षों से नारी के संबंध में कविताओं की बाढ़ ही आई हुई मालूम पड़ती है। सुधीश पचौरी ने 'कविता का अंत में' इसका एक नया ही काव्यशास्त्र तैयार करने का यत्न किया है और उस काव्यशास्त्र के मूल में करुणा की पहचान करायी है? पर अब बहुत-सी महिलाएँ भी कविता लिखने लगी हैं। इसे सामाजिक जागरूकता का एक लक्षण माना जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि पुरुष जब नारी के संबंध में लिखते हैं तो बहुत हुआ तो सहानुभूति से अनुप्राणित रहते हैं। यदि अपनी झेली हुई विषम स्थिति का मुद्दा हो तो शायद यह मानना गलत नहीं कि उसकी अभिव्यक्ति अधिक सच्ची स्वाभाविक और इसीलिए अधिक सम्प्रेष्य तभी होगी जब झेलनेवाला या वाली उसे स्वयं कहे। इसमें संदेह नहीं कि कविता, यहाँ तक कि साहित्य सहानुभूति और कल्पना से गहरा संबंध रखता है और फिर भी यह तो है ही कि कुछ ऐसे प्रसंग और अहसास हो सकते हैं जो प्रकृत तौर पर नारी-केन्द्रित हों। यह उत्साहवर्धक है कि बिल्कुल इधर कुछ महिलाओं के भी काव्य-संकलन छपे हैं। उनमें पुरुष-विरोधी भाव के अतिरेक के कुछ अटपटे संदर्भों के बावजूद नारी द्वारा नारी-चेतना की प्रामाणिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। यह नहीं कि उनमें केवल नारी-चेतना की अभिव्यक्ति है, अन्य अनेक संदर्भ भी हैं और रमणिका गुप्ता के काव्य-संकलनों में तो पर्याप्त व्यापक मानवीय सरोकार से ही गहरा लगाव दिखलायी पड़ता है।

इन काव्य-संकलनों पर बातचीत के क्रम में सबसे पहले कुसुम अंसल के 'विरूपीकरण' की चर्चा स्वाभाविक है क्योंकि इसका प्रकाशन पिछले दशक में हुआ है। इसकी कविताओं के सम्बन्ध में कवयित्री का कहना है 'ये कविताएँ एक मानसिकता विशेष की कविताएँ हैं। इन कविताओं में एक खोज है अपने विस्मृत 'स्व' की जो निरन्तर चलती रहती है, तथा मन का गोपनीय भी है जो सम्मुख आ खड़ा हुआ है।' इस प्रसंग में यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है

मैं जो एक भारतीय नारी/ बनी जी रही थी/कभी पिता, प्रेमी,  
पति/ और फिर पुत्र के लिए/बस एक नियत राह पर चली थी/

मेरे मन की चाहत को /अहमियत किसने दी / मैं जैसे उनकी खातिर जन्मी थी, /उनके जीवन को पूर्णता / देने के लिए जी रही थी।

और इसी तरह यह वक्तव्य भी उल्लेख्य है :

अपने पति अथवा शासक/ हो जाने की परिभाषा/हाथ में पकड़ा चुके हो/ और मैं...नासमझ बनी/एक शासित-सी/ अपने भीतर की कल्पनाओं को दबाती, कुचलती/किसी भी एक पत्नी-सी / परिभाषित होती रही।

स्पष्ट है, अंसल जिस मातहत की, स्वेच्छारहित साधन-रूप की बात कह रही हैं वह केवल उन्हीं की नहीं और इससे स्वभावतः यह प्रतीति होती है कि उनका 'स्व' केवल एक व्यक्ति का नहीं है। नारी को चीज समझने का पुश्तैनी संस्कार उन्हें विश्वोभ से भर देता है। उसकी ये अनुभूतियाँ अकारण नहीं हैं

जब भी तुम मुझको देखते हो, /मैं वस्तु में रूपान्तरित हो जाती हूँ/मैं शरीर नहीं, वृक्ष या मकान हो जाती हूँ/बस दृश्य में बदल जाती हूँ।...

अपने अस्तित्व की चट्टान ढोते-ढोते मेरा पदार्थीकरण हो रहा है।...

मैं अपने से / अपने होने से / कितना थक गई हूँ/ तार पर लटकते/गीले कपड़ों से/गंदगी के आँसू टपकते रहे।/ इनके संदर्भ में यह बिल्कुल सही है कि कवयित्री चाहे

कि मैं, अब अपने लिए

अपनी ही बात मान कर जी सकूँ।

अंसल ने कुछ अंतरंग की क्षणों की असंगतियों का भी संकेत किया है और उससे भी संवेदनशील नारी की कुछ उद्वेगपूर्ण मानसिकता का एहसास होता है। पर यह नहीं कि कवयित्री का स्वर असंयत हो, अनुभव होता है कि वे अटपटी स्थितियों का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। अंतरंग संबंध की असंगतियों की बारीक जांच करते हुए उन्होंने लिखा है :

मेरा और तुम्हारा असलीपन / तो अनछुआ छूट गया है/

आक्रोश सपनों का था / जो सच पर से गुजर/ इन्द्रधनुष तोड़ गया।

दोनों पक्ष अपने-अपने मन में सपने रचे हुए हों और उन सपनों के कारण संबंध सहज न हो सके तो इसकी जिम्मेदारी किस पर हो? फिर अंसल प्रेम के सम्बन्ध में पर्याप्त भावुक भी हैं :

प्यार, मंदिर की देहरी पर / नमित दो प्राणियों के हृदय का / एक भाव है / जो देवता के चरणों पर यों फूल जैसा / पवित्र, अनछुआ और सुरक्षित है।

वे यह भी कहती हैं :

मैं फूल, सूरज, गीत और / तुम्हारी मित्रता चाहती हूँ।

पर उनकी उलझन यह है कि उन्हें लगता है कि वे जिस कमरे में हैं उसमें कोई खिड़की नहीं है और इससे उनका दम घुटता है। उनकी यह पीड़ा समझी जा सकती है :

वह जो अंधेरा... मौन/ अनभिव्य है, शान्त है/ मेरे ही भीतर घुटा रह जाता है।

किसी विशेष क्षण में उन्हें आश्वस्ति मिलती है तो बड़े भावपूर्ण स्वर में कहती हैं : पहली दफा मनुष्य हुई हूँ/ जीया है मैंने।

कुसुम अंसल के स्वर में भारतीय नारी की पीड़ा और प्रसन्नता की अनुगूँज सुनायी पड़ती है।

दूसरा काव्य-संकलन मोना गुलाटी का है 'महाभिनिष्क्रमण'। इनकी कविताओं में जो मानसिकता है वह अकविता के दौर से जुड़ी हुई है। 'महाभिनिष्क्रमण' में गौतम बुद्ध के घर की कैद से नारी के बाहर आने का संकेत किया गया है। इस तरह यह काव्य-संकलन नारी-मुक्ति का दस्तावेज माना जा सकता है।

मोना गुलाटी प्रखर और तीक्ष्ण हैं तथा समाज में परम्परागत सांस्कृतिक मर्यादाओं के विषम स्वरूप के प्रति उनमें उग्र असहिष्णुता की चेतना दिखलायी पड़ती है। वे मर्द-चेतना को, पुरुष प्रभुत्व की प्रवृत्ति को सीधे ललकारती हैं। वे वैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग करती हैं जिन्हें सामान्य तौर पर प्रयोग में नहीं लाया जाता। शंका होती है कि उनके पास कुछ वैसे अनुभव तो नहीं हैं जो मानसिक ग्रंथि का रूप ले चुके हों।

मोना गुलाटी भावना से परे पूरी तरह बौद्धिक मालूम पड़ती हैं। वे जब तब

व्यापक संदर्भ की मानव नियति के सम्बन्ध में भी जागरूकता का परिचय देती हैं। पर उनके आक्रोश से स्पष्ट है कि वे 'अवांगार्ड' की भूमिका पसन्द करती हैं। यह तो है ही कि वे केवल अस्तित्व की जरूरतों को महत्व देने का आग्रह रखती हैं। असंभव नहीं कि इसके कारण कोई उनकी रचनाशीलता में अराजकता देखे। अराजकता उनमें हो भी तो वह केवल विचार, दृष्टि के संबंध में ही होगी अन्यथा उनकी कविताओं में सघन कसावट है और वे बनी हुई नहीं, बनाई हुई, मोना गुलाटी के पूरे नियंत्रण में मालूम पड़ती हैं। उनका यह काव्य संकलन इन चार खण्डों में विभक्त है आक्रोश और संत्रास, काटते हुए बनमानुषी पंजे, भीतर डूबते हुए तथा अकेले होने से होती है क्रांति। इस कविता से उनकी मानसिकता का प्रामाणिक संकेत पाया जा सकता है :

प्रत्येक पुरुष मुझे / बैल नजर आता है और / मैं उसे कोल्हू  
से बाँध / भाग आई हूँ।

मणिका मोहिनी भी अकविता से कुछ जुड़ी हुई हैं। इसके बावजूद उनकी कविताओं में सांस्कृतिक संदर्भ और भावात्मक प्रसंग भी हैं। उनके 'प्रेम-प्रहार', 'कटघरे में' और 'मेरा मरना' इन तीनों संकलनों में ये दोनों प्रवृत्तियाँ दिखलायी पड़ती हैं। इनसे आभास होता है कि वे शायद एक मुहावरा चुनकर उसे लगातार प्रयोग में लाती जा रही हैं और यह नहीं समझतीं कि इससे एक तरहपन के अहसास के साथ शंका होती है कि कहीं वे रुकी हुई तो नहीं हैं। यह तो खैर कहना ठीक नहीं कि उनकी मानसिकता भी नारी-मुक्ति की है। वे अंतरंग क्षणों की कुछ ऐसी अनुभूतियों या प्रतीतियों का भी उल्लेख करती हैं जो सामान्यतौर पर गोपनीय समझी जाती हैं। यह दुस्साहस का मूड है, गोकि शब्दों के स्तर पर उग्रता नहीं मालूम पड़ती।

मणिका मोहिनी ने घर के भीतर के संबंध के बारे में इतना कुछ कहा है कि उनके जीवन को लेकर कुछ उत्सुकता का होना स्वाभाविक है। जीवनी कुछ जानने को मिले तो इस तरह की कविताओं को शायद अधिक अच्छी तरह समझा जा सके। इस प्रसंग में ये कुछ संदर्भ स्मरण योग्य हैं।

घर / दीवारों से निकल कर / सड़क पर आ गया था।

(मेरा मरना)

जरा सी ताजी हवा पाने को / तोड़ दी मैंने दीवारें और छत/वरना

लोग तो / खिड़की और रोशनदान से भी/काम चला लेते हैं। (वही)

अपने से बच कर जब तुम/दोस्तों की महफिल में कहकहे लगाते हो/तुम्हारे ही खिलाफ पड़ जाते हैं / और हवाओं में फैल जाता है/तुम्हारा शब्दातीत पश्चात्ताप (वही)

मणिका मोहिनी प्यार के संबंध में भी मोहभंग की पीड़ा से भरी हुई मालूम पड़ती हैं। उनका कहना है :

भौतिक स्तर की समानता को / हम भीतर-भीतर निष्फल प्रयास में टटोलते रहे और हर बार एक गलतफहमी को / स्वाभाविक आकर्षण की बेहोश मनस्थिति में प्यार का नाम देते रहे। (प्रेम प्रहार)

उन्हें धर्म के पाखंड और नैतिकता के दोहरेपन से भी झुंझलाहट होती है। वे सच को महत्व देती हैं और इसी कारण असुविधाओं में पड़ने का उल्लेख करती हैं। फिर भी वे इस तरह की पंक्तियाँ लिखती हैं :

देव अस्वीकरना नहीं। मेरी पूजा लौटना नहीं। (प्रेम प्रहार)

पर उनकी कविता का केन्द्रीय स्वर है सहृदयता से न समझे जाने की पीड़ा। वे कहती हैं :

तुम्हारे शब्दों के पीछे / मात्र तुम्हारा जिह्वा रस है/ किसी के अतीत को झेल पाने वाली/ विशाल हृदयता नहीं (कटघरे)

इस स्थिति में यह जिज्ञासा बड़ी करुण है :

कैसा होता है / स्वनिर्मित रूपों को विरूप करके देखना (वही)

मणिका मोहिनी ने व्यापक संदर्भ के अनुभवों के संबंध में भी लिखा है। खास बात है कि उनकी कविता पारदर्शी प्रतीत होती है और इस तरह अनुभव होता है कि वे अपने मन की पर्त दर पर्त खोल कर शब्दों में बदलती हैं।

मंजु गुप्ता की 'मिट्टी की वर्णमाला' की कविताओं का भी मुख्य आकर्षण प्रबुद्ध नारी की मानसिक यंत्रणा की अभिव्यक्ति है। उन्हें भी मुक्ति की आकांक्षा है। वे कहती हैं :

मैं बहने लगी निर्बाध / वर्जनाएँ तोड़ती / अर्गलाएँ मोड़ती / बहती चली गई / आ-दिगंत

उन्हें भी घर के भीतर का वातावरण कैद सा मालूम पड़ता है। उनका कहना है :

अफसर पति घर में भी अफसर ही रहता है.../घर बचाने के लिए जरूरी है / कि वह (नारी) अपनी बुद्धि/बाहर पायदान पर उतार कर / घर में प्रवेश करे

उन्होंने नारी के लिए घर को 'प्रतिमा का मकबरा' एक बड़ा ही सटीक नाम दिया है।

पर मंजु गुप्ता का स्वर संयत और सौम्य है। वे नारी की यंत्रणा की अभिव्यक्ति के बावजूद उसकी प्रीतिकर भूमिकाओं के सम्बन्ध में भी पर्याप्त संवेदनशील हैं। उन्होंने लिखा है :

जहाँ भी होती है धरती पर सुबह.../वहाँ कोई न कोई लड़की है जरूर/नाजुक हाथों से आंगन बुहारती /चौका लीप रही

क्या इन संदर्भों में स्मृति-चित्र नहीं हैं? क्या ये इस समय की पहचान रखते हैं? स्पष्ट है कि मंजु गुप्ता वर्तमान के बोध और अतीत के मोह को एक साथ संभालने में लगी हुई हैं। यह जरूर है कि वे प्रतिकार की सशक्त मानसिकता का महत्व समझती हैं। उनका विचार है :

तुम रोककर गंवा देते हो जिसे / उस शक्ति को भीतर संचित करो/ धीरे-धीरे ज्वालामुखी बनो/ जिसके धधकने से/ टूटे यह जड़ता चुप्पी बंजरपन

उन्होंने पर्यावरण और देशभक्ति आदि के संबंध में भी अपनी भावनाओं का संप्रेषण किया है। उनकी रचना-प्रक्रिया में कुछ फैलाव है और बहुधा यह प्रतीत होता है कि वे वक्तव्यात्मक हैं, गोकि वे कुछ बड़ी आकर्षक, सार्थक और चटक झलकियाँ भी प्रस्तुत करती हैं।

माया प्रसाद का काव्य संकलन 'सुनो युधिष्ठिर' की कविताओं में भी नारी यंत्रणा का विशिष्ट स्वर है। वैसे अन्य कवयित्रियों ने भी मिथकों से काम लिया है पर युधिष्ठिर के मिथक के सहारे द्रौपदी को दाँव पर लगाये जाने के माध्यम से स्त्री को चीज समझने की मनोवृत्ति पर जो चोट की गयी है वह सबके लिए संवेद्य है। फिर माँ के द्वारा लाडली बेटी को यह सीख देना कितना तीखा है :

पतीली में सीझते चावलों-सी / खदबदा लेना/उफनना मुनासिब नहीं है / आटे-सी गूंथी जाना/रोटी-सी सिकती रहना... / औरत हो ना?

माया प्रसाद में यथार्थबोध है और इसी कारण वे घर से उचाट के बावजूद कहती हैं : मैं सिद्धार्थ तो नहीं हूँ / त्याग नहीं सकती घर उन्हें भी पीड़ा है कि दीवारों से टकराती हुई उनकी चेतना कुंठित और अवरुद्ध हो गयी। वे पूछती हैं :

देखी है तुमने वह नदी / झील बन गयी नदी/मेरे भीतर की?

नारी की सर्जनशीलता की अनूठी अनुभूति का यह सांकेतिक संप्रेषण अपने आप में अद्वितीय माना जा सकता है :

कितनी अच्छी लगती है / माटी को, अपने भीतर/उमगते अंकुर की प्रतीति /एक अनूठा सुख/जिसे माटी, सिर्फ माटी जानती है माया प्रसाद ने भी मणिका मोहिनी की तरह गजलें लिखी हैं।

सुशीला टाकभैरे के काव्य-संकलन 'यह तुम जानो' में उनके व्यक्तित्व के दोनों पक्ष उजागर होते हैं। वे पक्ष दलित चेतना और नारी चेतना के हैं। स्वभावतः कविता में इन दोनों के दबाव से अधिक खुलापन, और गैरसमझौतावादी रूख दिखलायी पड़ता है। वे कहती हैं :

लोग / भूकम्प की बात को/सहज मानते हैं / स्त्री / ज्वालामुखी हो सकती है/यह भी तो सहज बात है

इनका यह वक्तव्य कितना प्रखर है :

पुरुष प्रधान समाज में / चाहे समर्पण हो/या विद्रोह / दुर्गुण का दोष नारी पर है/पुरुष के दुर्गुणों पर हमेशा / मनु नाम की / चादर डाल दी जाती है।

टाकभैरे ने मिथकों के माध्यम से भी अतीत की असंगतियों की चेतना जगायी है। बाल्मीकि को स्मरण करते हुए वे विश्वास के साथ कहती हैं :

दलित महत्वाकांक्षी का/ हत्यारा वोधिक समय / अब बीत चुका है

अन्य कवयित्रियों की तरह इनकी भी आकांक्षा मुक्ति की है :

मुझे अनन्त असीम दिगन्त चाहिए/छत का खुला आसमान नहीं/ आसमान की खुली छत चाहिए/मुझे अनन्त आसमान चाहिए

'हत्यारा वधिक' और 'अनन्त असीम' जैसे प्रयोग उमंग के अतिरेक के साथ वाग्मिता के ओज का संकेत करते हैं।

इन्दिरा गौड़ का संकलन 'सुधियों का कुम्भपर्व' छंदों में बंधे हुए, नाद और लय की मिठास से भरे हुए गीतों का है। गीतों के संबंध में गौड़ का वक्तव्य उल्लेख्य है :

शिल्प में जाऊँ उलझ मैं / यह नहीं अनुरक्ति मेरी / सहज सा  
व्यक्ति मेरा / सरल सी अभिव्यक्ति मेरी

उनका यह कथन भी ध्यान देने योग्य है 'गीत लिखने के लिए तो सिर्फ संवेदन बहुत है!' यह साधारण बात नहीं कि वर्तमान तनावों के और बहुत कुछ अलगावों के तीखे दौर में उन्होंने स्वर, संवेदना और सौन्दर्य की साधना से मरुस्थल में यह एक हरित उद्यान जैसा आकर्षक द्वीप निर्मित कर दिया है।

चम्पा वैद के 'अब सब कुछ' की कविताओं में नारी की सर्जनशीलता का एक नया आयाम उभरता हुआ दिखलायी पड़ता है। नारी-यंत्रणा की चेतना तो उनमें भी है पर उसे उभाड़ कर नहीं रखा गया है। उसे दबा कर, पचा कर, हौले-हौले रखा गया है। खास यह है कि अभिव्यक्ति के बदले भाव, संवेदना के संकेत से कविताओं की रचना की गयी है। स्थितियाँ नारी-जीवन से गहरे तौर पर जुड़ी हुई हैं। इस तरह भाव संवेदना के साथ-साथ उसकी उत्प्रेरक स्थितियों की प्रकृति के संयुक्त सर्जनात्मक संदर्भ से एक ऐसी कविता का प्रारूप तैयार हुआ है जिसे समग्रता में नारी-कविता कहा जा सकता है। उसके कुछ स्फुट प्रसंग अन्य कवियों की रचनाओं में भी हैं पर वैद ने उसे अपने वैशिष्ट्य के रूप में प्रस्तुत किया है। यह कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा कबीर की कविताओं में जुलाहे के जीने से जुड़े हुए प्रसंगों का समावेश है। इन कुछ प्रसंगों से चंपा वैद की नारी-कविता के प्रारूप का स्पष्ट बोध होता है :

जब मैं तुम्हारी गोदी में / बैठना चाहती थी / उस रात / बाहर  
बिछी चारपाई पर / तुमने मेरा हाथ झटक दिया था / कहा था  
यहाँ / तेरा भाई बैठेगा / तुमने उस दिन मुझको / लड़की का  
जन्म दिया था

शब्द सुन्दर कटे / आलुओं के टुकड़ों-से/एक से

मैं अपनी त्वचा को / फटे कालर की तरह / उलट देना चाहती  
हूँ क्यों?

आकाश आज / मैले कपड़ों से बचे / गंदे पानी जैसा है

घिसती चली जाती हूँ / साबुन-सी

आज सुबह सूरज निकलने से पहले / आकाश सूखती गुलाबी  
साड़ी-सा लगा / ...सूरज उभरा/जलती सिगरेट की आँख-सा

मन इधर-उधर भागता है / छोटे बच्चे की हिचकी सा

दिन मलमल के मैले दुपट्टे-सा

बाल बढ़ रहे हैं / ...नन्हें शिशुओं से

आकाश तन्दूर को घेरे / सूखे आटे से / पूछ रहा है / पिछली  
रात की बातें।

इनसे स्पष्ट है कि चम्पा वैद अपने जीने के संदर्भों को इतनी बारीकी से देखती हैं कि उन्हें जो कहना है उसी से कहने का ढंग भी उभर आता है और इस तरह माध्यम संदेश हो जाता है। वे नारी की स्थिति के संबंध में कुछ कम बेचैन नहीं हैं और यह भी कहती हैं :

माँ आज नहीं है / मैं हूँ / वृन्दावन का नाम सुनते हैं / मैं फिर  
माँ के साथ घूमने लगता हूँ

चम्पा वैद की इन कविताओं से यह दिलचस्प दबाव पड़ता है कि इनकी सर्जनशीलता पर गंभीरता से ध्यान रखा जाये क्योंकि यह बहुत संभव है कि उनके माध्यम से बिलकुल खास ढंग की नारी-कविता उभरे।

रमणिका गुप्ता की कविताओं का नया संकलन 'कैसे करोगे बँटवारा इतिहास का' तात्कालिक परिस्थितियों से अनुप्राणित रचनाशीलता का सार्थक स्वरूप प्रस्तुत करता है। इन्हें जिसने लिखा है वह छोटी पहचानों से परे मात्र मनुष्य की भूमिका में है और उसे मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने का आग्रह है। उसे समझ में नहीं आता कि जीने के अनगिनत संदर्भों में साझेदारी की सच्चाई के बावजूद कैसे धर्म या जाति के आधार पर पारस्परिक शत्रुता की अनुभूति पैदा हो जाती है। उन्हें प्रतीत

होता है कि निहित स्वार्थ से जुड़े हुए तत्व अपने प्रपंच से उन्माद पैदा कर विवेक को कुंठित कर देते हैं जिनसे उनका कुत्सित रवैया जारी रहे पर उन्हें विश्वास है कि मेहनतकश इस धिनौनी स्थिति को आज न कल जरूर समझेंगे। मनुष्य के प्रति निष्ठा ही इस विश्वास की नींव है।

रमणिका गुप्ता ने बहुत मामूली से प्रसंगों को लेकर अपनी मान्यता का संप्रेषण किया है और इस प्रक्रिया में उन्होंने अपनी बौद्धिकता के कवच को अलग हटा कर लोगों से लोगों की बोली में बातचीत करने की प्रवृत्ति अपनायी है। पहले परकाय प्रवेश की चमत्कारपूर्ण साधना होती थी। यह जनकाय प्रवेश है। कवि अपने व्यक्तित्व से मुक्त होकर निपट वर्तमान में कैसे मानव-प्रेम की सार्थकता देखता-दिखलाता है, इसकी मिसाल इन कविताओं में है। यह सशक्त विवेकवाद से संभव हुआ है, इस संकलन में प्रस्तुत हुई है जन कविता जितनी वस्तुप्रकृति में उतनी ही बनावट में भी प्रस्तुत हुई है। रमणिका गुप्ता ने साम्प्रदायिक दंगों और उनके जैसे भयंकर प्रसंगों में बौद्धिकों की भूमिका को लक्ष्य करके कुछ कड़वी टिप्पणियाँ की हैं। 'बहस' कविता का सन्दर्भ उल्लेख्य है : मुहल्ले में आग लग गयी / हम बहस कर रहे हैं, भीड़ दरवाजा पीट रही है / कर्पूरु लगने ही वाला है / गुण्डे घेर रहे हैं, घर / अन्दर बहस जारी है दरवाजा बन्द है। ये सीधे-सादे शब्द अपने संकेत में बेतरह तीखे मालूम पड़ते हैं बटखरों की जगह घरा / हमीद और उसमान कैसे करोगे बँटवारा इतिहास का?। इसी तरह उनका प्रश्न है 'तुम धान की किस बाली को / कहोगे हिन्दू किसको मुसलमान'?

रमणिका गुप्ता ने 'रामायण' के वजन पर 'मजदूरायण' और 'सीतायण' की कल्पना भी की है। 'मजदूरायण' एक लम्बी कविता है। कभी तुलसीदास ने लिखा था कि दुनियारूपी सीता को दारिद्र्य रूपी रावण ने दबोच रखा है। यह उद्भावना है 'मजदूर राम है / मेहनत उसकी सीता रानी / जहाँ भरेगा पेट / वही अयोध्या हमरी नगरी / जहाँ जुल्म असह्य / वही रावण की लंका नगरी'।

पहले यह उल्लेख्य है कि रमणिका गुप्ता ने मात्र मनुष्य के रूप में लिखा है। बात यह है कि वे नारी हैं तो मुक्ति-कामी नहीं, मुक्त, यद्यपि सामान्य तौर पर उनका पक्ष नारी-मुक्ति का ही क्यों, मानव-मुक्ति का है। उन्होंने अपने पहले की कविताओं में यंत्रणा के और उसके विरुद्ध संघर्ष के संदर्भ पार कर लिये हैं। उन्होंने लिखा था 'मैंने रिश्ते तोड़ दिये हैं / ताकि नारीपन की ग्रंथि से मुक्ति पा सकूँ। इन्सान बन सकूँ'।

वे उत्कट रूप में अनुभव करती हैं 'इस व्यवस्था में / चयन का मेरा अधिकार नहीं'। उन्होंने नारी की विषम स्थिति को इन कुछ पंक्तियों में समेट लिया था 'पैदा होते ही / मेरी 'मैं' मर जाती है और रह जाती है एक लाश / एक नारी / पुत्री से बहन और बहू तक की यात्रा तय कर / माँ की मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते / मैं कई बार मर लेती हूँ / और किसी न किसी के कंधे पर / ढोयी जाती रही हूँ।'

पर नहीं, अब वे केवल 'इन्सान' हैं यद्यपि उनकी कुछ कविताओं में नारी की अनूठी अनुभूतियों की प्रीतिकर अभिव्यक्ति है। ये कुछ प्रसंग देखने योग्य हैं जन्म ले ले एक नया दिन। (प्रकृति युद्धरत है) इसी तरह का यह प्रसंग है 'सूरज आ गया है मेरे कमरे में / अन्धेरा मेरे पलंग के नीचे छिपते-छिपते / पकड़ा गया है / और धक्के लगा कर बाहर कर दिया गया है उसे / धूप से तार-तार हो गया है वह।

यह तो ठेठ नारी-मन की अपनी बात है फुसफुसाहट / अंकुर के फूटने की ध्वनि-सी / कोमल जन्म की अनुभूति-सी / और पेट के भीतर करवट बदलते बच्चे की / आहटों-सी / मेरे कान में कह जाती है / एक अमर्त्य जन्म-कथा।

जिस रमणिका गुप्ता ने मुक्ति का यह उत्सव मनाया है वे जब वर्तमान दौर में अपने समाज के भीतर गहराते हुए मानव-द्रोही अंधेरे को देख कर विशुद्ध हो उठती हैं तो यह स्वाभाविक ही है। 'कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का' उनके विशोभ का दस्तावेज है।

**डॉ. नागेश्वर लाल**

## सुमति अय्यर

### प्रेम-1

भोर की दहलीज पर  
छूट गये स्वप्न-सा  
इस खुमारी में  
छूट गया एक शब्द  
प्रेम...

जो न बचाया गया  
न सहेजा गया  
पंख लगाकर उड़ गया  
चिरैया की तरह

शाम के झुटपुटे में  
बिलाती सिंदूरी नदी सा  
इस आपाधापी में  
छूट गया एक शब्द  
प्रेम...

जो न बचाया गया  
न सहेजा गया  
हौले से बह गया  
शांत बहती नदी की तरह

न,  
छुआ नहीं उसे प्रेम ने,

हल्के से ही सही  
दवा की तरह  
आँच नहीं दी,  
पलाश की तरह  
चूमा नहीं उसे  
ओस की तरह  
प्रेम नहीं आया  
स्वप्न की तरह  
फूलों की तरह  
चिड़ियों, झरनों की तरह  
गुनगुनाती चाँदनी की तरह  
मुस्कुराती हरियाली की तरह  
तभी तो,  
चिड़िया उड़ गयी चुपचाप  
पलाश झुलस गया बेमौसम  
झरना सूख गया बेआवाज  
तभी न!

### प्रेम-2

आतंक और विध्वंस की  
इस भयावह दुनिया में,  
आदेशों और फाइलों की  
इस सरकारी इमारत में  
बहुत जतन से बचा पायी हूँ  
थोड़ी-सी प्रकृति, अपने हिस्से की  
थोड़ा-सा प्यार, तुम्हारे हिस्से का  
और थोड़ी-सी छुट्टियाँ, हमारे हिस्से की!

फिर सिर्फ



यही तो किया  
कि मुट्ठी भर पूस की धूप को  
चुरा कर फाइलों में छिपा लिया  
फागुन की चाँदनी को दराजों में  
और भादों की नमी को आलमारी में  
छिपाकर रख लिया  
कि जेठ की ऊँघती / तपती दोपहरी में  
थोड़ी-सी फुरसत में  
मेज के कागजों को हटाकर  
इन्हें फैला लूँगी!  
खिड़की के पास झूल आते  
कदम्ब की डगाल पर  
तारीखों को टाँग दिया  
मीटिंग / रिपोर्ट / संसद प्रश्न और  
परिपत्रों को

न,  
कदम्ब बदसूरत नहीं हुआ  
पर ठिठक गया सहमा-सा  
डगालों पर बैठी चिड़िया  
चुपचाप भीतर झाँककर  
फाइलों, दराज और अलमारी के  
खुलने का इंतजार करती रही  
फिर गर्दन झटककर  
फुर्र से उड़ गयी  
डगाल कुछ परे झूल गया हवा में!

न,  
उन्हें नहीं पता कि  
फाइलों की भाषा में

गुम हो गया है, टुकड़ा धूप का  
चाँदनी पिघल गयी है  
दराज में भरे फालतू परिपत्रों में  
और बारिश की नमी सूख रही है  
अलमारी में बन्द  
रजिस्ट्रों, फाइल कवरों और  
टाइप पेपरों में!  
सुनो,  
इससे पहले कि  
चिड़िया उड़ जाये  
और कदम्ब की डगाल सूखने लगे  
तुम कर सकते हो एक काम  
अपन क्यों न  
चुरा लें कुछ दिन छुट्टियों के  
और चले जाएँ पहाड़ों के उस पार  
चुरा लाएँ वहाँ से  
थोड़ी-सी रातरानी की महक  
जाड़े की नरम धूप  
क्षितिज के सिंदूरी रंग  
मिट्टी की सोंधी गंध  
अमलतास की हँसी  
गुलमोहर की दहकन  
पलाश की आँच

हरसिंगार की ठंडक  
चुरा लाएँ वहाँ से  
कुछ सिंदूरी शमा  
कुछ जूही की महकती रात  
कुछ फुरसती दोपहरियाँ  
कि फाइलों का मटमैला रंग

तारीखों की तल्खी  
कुछ कम हो जाय  
कदम्ब को झांकना न पड़े सहमकर  
चिड़िया को इंतजार न करना पड़े!

तुम इतना भर कर दो  
इस डगल और चिड़िया को बता दो  
चाँदनी, धूप, नमी नहीं बची  
तो क्या हुआ  
छुट्टियाँ शेष हैं  
पहाड़ के उस पार की  
संभावना शेष है, अब भी,  
चाँदनी, धूप और नमी की!

### प्रेम-3

टटलोती रहीं तुम्हारी आँखें  
मेरे चेहरे को  
ढूँढती रही शायद वह  
जो तुम पढ़ना चाहते थे  
या कि  
जो सचमुच मैं कहना चाहती थी  
पता नहीं क्या मिला तुम्हें अकसर  
वह जो तुमने चाहा पाना  
या कि वह जो मैंने कहना  
पर सच है जब भी तुमने टटोला  
मैं  
चिड़िया हो गयी चहचहाती  
मैंह हो गयी आकार बदलती  
अमलतास हो गयी हँसी बिखेरती

पलाश हो गयी आँच बाँटती  
हरसिंगार हो गयी शांत झरती  
बसंत शरद हो गयी  
पर नहीं हुई सिर्फ चेहरा  
तुम्हें भी तो नहीं मिला होगा  
कोई चेहरा  
मिला होता तो  
तुम भी हो जाते चेहरा  
तमाम चेहरों के बीच  
एक चेहरा  
पर  
तुम आकाश हुए समेटते  
समुद्र हुए डुबोते  
बारिश हुए भिगोते  
पहाड़ हुए मुग्ध करते  
छतनार हुए सुरक्षा देते

न  
तुम चेहरा नहीं हुए  
इसीलिए तो  
मैं मेंह बनी  
मछली बनी  
बारिश की बूँद बनी  
पहाड़ की बर्फ बनी  
छतनार की खुशबू हुई  
नहीं हुई सिर्फ चेहरा  
हम हम हैं  
कि चेहरा नहीं हैं  
सर्वनाम नहीं हैं।

## इन्दु जैन

### लड़की

गणित पढ़ती है ये लड़की  
हिन्दी में विवाद करती है  
अंग्रेजी में लिखती है  
मुस्कुराती है  
जब भी मिलती है  
गलत बातों पर  
तन कर अड़ती  
खुला दिमाग लिए  
जिंदगी से निकलती है ये लड़की

अगर कल किसी ने कहा  
धोखा दिया इसे जिंदगी ने  
नहीं मानूँगी  
क्यों खाया इसने धोखा  
और सच्चाई का ये फल पाया!  
तलाश में निकलूँगी  
उस झूठ की  
इसे साथ लेकर,  
रोने नहीं दूँगी  
क्रोध एक ताकत है  
उसे खोने नहीं दूँगी  
मुट्टी में लेता है जो फूल समझकर

डंक लगता है उसे  
तो पहला उसका अपना दृष्टि-दोष  
तब छद्म की चतुराई को  
मुट्टी की मसलन की सजा।

तेजस्विता / एक पिछली हुई रोशनी है  
दूर तक जाती  
खुद के साथ-साथ / दूसरों को नहलाती  
वह उजासा  
जिसमें दिन फूटता है  
कली की तरह  
बम की तरह फटता नहीं  
जिसमें हालात  
हावी नहीं  
महज तयशुदा भावी नहीं  
गीली मिट्टी से  
रौंदे संवारे सथराए जा सकते हैं।  
तेजस्विता अगर चाक नहीं  
तो मूर्ति का प्रभामण्डल है  
सुन्दर और निष्प्राण  
जीते जागते इंसान के  
सिर पर कसा शिकंजा  
इतिहास उस वक्त  
बिजली के झटके लगाता  
कुंद करता  
निष्प्रभ बनाता यंत्र मात्र रह जाता है।

ये लड़की  
हालात को हादसे बनने नहीं देगी  
उम्मीद को बंजर जमीन पर

नहीं छिटकाया है मैंने  
कितनी ही और भी तो हैं लड़कियाँ  
नजर ने चुना है इसे  
दृष्टि-दोष होगा नहीं  
होगा तो मानूँगी  
धोखे की दुहाई नहीं देंगी  
आँख को रोने नहीं देंगी।

### वसीयत

कूद कर आयी थी छाया  
दहलीज लांघ कर  
मैं तैयार न थी  
कितनी देर खड़ा रहा  
अँधेरा  
दाँत किटकिटाया  
जब लपका कौंदा बनकर  
कोई जिरहबख्तर न था मेरे सीने पर  
क्योंकि अन्दर की आँखें  
बंद रखी थीं मैंने  
भाला आर-पार हो गया।  
किसे दोष दूँ  
अँधेरे को  
या अंधेपन को?

माना  
मौत के बाद  
खुली मेरी आँखें  
लेकिन इनका उजाला  
तेरे नाम वसीयत

कर रही हूँ मेरी बेटी!  
इस ठोस छाया के लिये  
नेजे पैना ले  
पहले से  
अब दिये-विये जलाने के  
दिन गये  
बिजली बन कर टूट  
चूर-चूर कर दे  
जो आँख उठाये  
इधर  
रोशनी से  
अंधा कर दे!

### हथेली

वो खुशबू नहीं  
एक मरोड़ थी  
ज्योंही उसने शॉल से हाथ निकाले  
रंगीन तोते मोर फूल पत्ते  
हथेली पर कैद  
फड़फड़ाने लगे।  
जादू से जैसे हरा रंग  
कत्थई और नारंगी में बदलता है  
उसी तरह मेंहदी की खुशबू  
एक याद की महक लौटा लाई  
जिसमें लाल रंग  
अंधेरे में बन्द आँख के पीछे की  
रोशनी था,  
जिस डर को लेकर  
वो घर से निकली थी

आगे-आगे चल रहा था  
वो पलट कर  
वापिस नहीं होती थी  
और न डर पलट कर  
उसके आमने-सामने।

बस में बैठे-बैठे  
चांटे की आवाज पा चौंकी थी वो  
जिसे किसी बेहूदा हरकत पर  
एक अधीर हाथ ने जमाया था।  
आसपास लोग गर्दन फेर  
बहस में मशगूल हो गए  
आगे-आगे चलने वाला डर  
झट उसकी बगल में आ बैठा  
तोते मोर शोर मचाने लगे  
फूल पत्ते कांटे चुभाने लगे  
उसने थरथराते हुए हाथ  
शॉल में छुपा लिए  
मुझे क्या लेना-देना  
कुछ ही दिनों में मेरी  
शादी होने वाली है  
मेरा कुछ नहीं लगता वो गाल  
न ही वो हथेली मेरी थी

और पाया कि अपने बावजूद  
उसकी काँपती टाँगें खड़ी हो गई थीं  
जैसे वही आदमी बगल में बैठा हो  
आया हो  
और वो दूसरी लड़की हो  
उसके अपने

रिसते कोरे होते हाथ।  
फिरी गर्दनों के बीच उसकी अकेली गर्दन  
घूम गई थी आवाज की तरफ  
कहीं नहीं कोई बीता हुआ पल  
कोई अगला दिन  
बस आज था अभी  
जिसमें वो दोनों खड़ी थीं  
दो हाथों की तरह

दूसरी की आँख में क्रोध का आँसू  
झिलमिला रहा था तारे की तरह  
इससे मिलते ही  
फूटने लगा सूरज बन कर  
आमने-सामने  
नजर के पुल पर दोनों बढ़ीं  
बीचमबीच आ मिलीं  
सिरों से डगमगाता पुर सध गया।

उनके एक होते ही  
अजीब ढंग से डर पीछे दुबक गया  
...और पीछे...हटा...  
लड़की इत्मीनान से आगे चलती गई  
फासला जितना बढ़ता गया  
घर पास आता गया...  
और मेंहदी की महक?  
उसे तो मैं भूल ही गई थी

## तीन औरतें

एक औरत

जो महीना भर पहले जली थी  
आज मर गयी  
एक औरत थी  
जो यातना सहती रही  
सिर्फ पाँव की हड्डी टूट जाने से  
बहाना ढूँढ बैठी न जीने का  
दिल जकड़ लिया  
मर गयी

बरसों पहले हुआ करती थी  
एक लड़की  
याद आती है  
अच्छी-खासी समझदार और दबंग  
अनचाहे ब्याह  
नेहरीन मातृत्व से रोगी हुई  
छोड़ दी दवा  
वो भी मर गयी अपनी इच्छा से

तीन मौतें जब राहत देने लगे  
मरने और खबर सुनने वालों को  
कहीं जबरदस्त गड़बड़ है  
घाव बहुत गहरा  
संवेदना हादसा है  
गठे हुए समाज में  
गठान गाँठ है  
गाँठ फाँसी का फंदा

जब इन्सान हद से बढ़कर  
हिम्मत करता है  
जीने के लिए जान देता है

तब मर जाता है इतिहास  
पुस्तकालय संग्रहालय  
धू धू जलने लगते हैं  
आदमी अपनी गर्दन  
हाथ पर उठाए  
हाट में निकल आता है  
मरने वाला अपने साथ  
तमाम को लिए चला जाता है

खाँसने लगता है साहित्य  
कविता थूक के साथ खून उगलने लगती है

### मुट्ठी में

मैं डरी जरूर  
लेकिन मरी नहीं  
मरती  
तो डर मर जाता

जब बंदूक उठी  
मैंने हाथ उठाया  
डर ने असंतुलन में  
सम बैठाया

आँखों से चीखी  
पहाड़ को पत्थर  
खाई को नाली सा फलाँग  
डर को डराया

तनी तो

मर कर भी मरी नहीं मैं  
मुट्ठी बन  
बँधी रही मैं।

### क्योंकर

कागज की नाव भी  
तैरती तो है  
जब तक है

### डूब कैसे जाऊँ

हाथ पैर साबुत हैं  
चलाऊँगी छटपटाऊँगी  
गला घोटते हाथों की  
गर्दन तक ले जाऊँगी

### देखो तो!

गिलहरी किस फुर्ती से  
पेड़ पर चढ़ी है  
अनार कुतरने  
तू कैसे नीचे खड़ी है  
गिरे दाने ओकती

जंगल में रहने वालों के  
हाथ पाँव मजबूत होते हैं  
तू शहर को घर मान  
सहमी पड़ी है

किताबें तेरा अस्त्र हैं  
दिमाग शस्त्र  
अपनी फौज कैसे भूल गई  
कैसे भूल गई तू कद में  
पेड़ से हमेशा बड़ी है

एक स्कूल छूट गया  
दूसरा खुला है  
छूट छूट  
क्यों इस तरह  
धनुष पर खिंचे बाण सी  
चढ़ी है

ये लड़ाई नहीं  
बीज का धर्म है  
सूरज की गर्मी से  
चाँद तारों हवाओं से  
किसलिए इस कदर डरी है

जरा देख तो  
गिलहरी किस फुर्ती से  
पेड़ पर चढ़ी है।



## ग्रेस कुजूर

### कलम मौसम बदलेगी

मिसाइलों और तोपों की आवाज  
अब कानों को सुनाई नहीं पड़ती  
सुनाई पड़ती है  
तो सिर्फ  
गर्म रेत पर गिरते हुए  
तुम्हारे लहू की आवाज

सिहर-सिहर उठती हैं  
जिस्मानी नसें और  
धमनियों में कहीं अटक जाता है  
लहू का एक कतरा।

अब रेगिस्तान में  
रेत की आंधियाँ  
नहीं चलतीं  
रेती गीली हो गई है  
इन्सानियत के लहू से।  
और अब  
खजूरों की तमाम शाखें  
लहू के भार से  
झुक गई हैं,  
रेगिस्तान के सूने पृष्ठों पर

इतिहास के काले अक्षरों को दुहराने

लेकिन  
हे! अमन के परिन्दो  
एक बार  
खजूरों के देश हो आओ  
और लाओ / वहाँ से  
हम सबके लिए  
मीठे खजूरों की गुच्छियाँ  
तेल की धार न देखो  
देखो कलम की धार..

तुम्हारे लिए / हाँ तुम्हारे लिए  
कलम मौसम बदलेगी  
कलम मौसम बदलेगी

### बौना संसार

जब-जब औरत को  
धरती के नीचे तक  
दबना पड़ा है  
तब-तब अंकुरित हुई है वह

हारे-थके पथिक की तरह  
जब कभी  
आगोश में उसके  
आते हो तुम,  
तब-तब बरगद सी अंकुरित  
हुई है वह

फिर भी उसका बरगद होना  
तुम्हें अच्छा नहीं लगता  
और तम उसे  
बोन्साई की तरह  
ड्राईंग रूम के गमले में  
कैद कर देते हो

इसके बावजूद वह  
फूलती है फलती है  
और तुम उसके  
इसी बौनेपन में कितने खुश हो

ओह कितना बौना है यह आदमी  
और उसका  
बौना संसार!!

### जब पर्वत रोएगा

पर्वतों की फिजाओं से  
आती आवाजों को  
कभी सुना है तुमने

जिनकी गुफाओं में  
प्रकृति सोती है  
हवाएँ झूलती हैं  
खामोश है जहाँ  
ऋषि-मुनियों की  
मौन भाषाएँ  
और जुड़ी हैं  
वन-प्रांतर की

अनेक कथाएँ  
जिनकी तराइयों में  
बहती हैं जीवन की  
कई धाराएँ

क्या तुमने पर्वत को देखा है कभी रोते?  
क्या सुनी कभी  
उसके अन्तस्थल की आवाज?  
क्या कभी देखा है  
उसका टुकड़े-टुकड़े होकर  
बिखरना-छितराना?  
इसके बावजूद  
देखी होगी तुमने  
उसके अन्तस की  
निर्मल धारा  
सुनी होगी उसकी  
जल तरंग  
जिन नदियों के किनारे  
तुमने बजाई होगी  
अपनी राधा के लिए  
सौतन बांसुरिया  
जिसकी डगर पर  
फोड़ी होगी  
रसवन्ती गगरिया

आज तुम  
अपने ही लिए  
पर्वतों के पत्थर  
तोड़ रहे हो  
बारूदी गंध में

जीवन को  
मरोड़ रहे हो  
क्या कभी लौट कर  
पूछेंगी नदियाँ  
अपने खण्डहर होते  
पर्वत से  
कहाँ गया उद्गम।  
कहाँ गया वैभव?

पर्वत रोएगा  
सूख जाएगी उसकी धारा  
न किसी मोहन की  
बांसुरी  
नदिया किनारे  
तड़पेगी  
अपनी राधा के लिये  
और न फूटेगी  
कोई गगरी  
न पकड़ेगी कोई  
रेत में  
टेगरा और गीतू

एक बूँद पानी के लिए  
तड़प-तड़प जाएँगी  
हमारी पीढ़ियाँ  
इसलिए मैं सच  
कहती हूँ  
ओ!  
समय के पहरेदारो  
तुमने अवश्य सुनी होगी

एक वृक्ष की जगह  
लगाओ  
दूसरा वृक्ष  
लेकिन क्या कभी सुना है  
एक पर्वत के बदले  
उठाओ दूसरा पर्वत?

करोड़ों साल में बने  
इस पर्वत को  
तुम्हारे बारूदी मन ने  
फिर-फिर तोड़ा है  
कुवाँरी हवाओं को  
जिसके धूल-कणों ने  
बेरहमी से  
बार-बार छेड़ा है।  
तुम्हें तो मुँह छुपाना  
भी नहीं आता  
शायद इसीलिए  
उड़ा रहे हो धूल  
शुतरमुर्ग की तरह  
मुँह छिपाने के लिए

इसलिए  
फिर कहती हूँ  
न छेड़ो प्रकृति को  
अन्यथा  
एक दिन  
माँगेगी  
हमसे  
तुमसे

अपनी तरुणाई का  
एक एक क्षण  
और करेगी  
भयंकर...बगावत  
और तब!  
न तुम होगे  
न हम होंगे!!

### मेरा आदम मुझे लौटा दो

दोनों थर-थर काँप रहे थे  
दीवारों को कान लगाए  
बड़ी गौर से जाँच रहे थे

ईंट पत्थर एक-एक कर  
ढह रहे थे  
या कि ढहाए जा रहे थे  
लेकिन दोनों  
तहखाने के अंधेरे कोने में  
दुबके सांसें भींच रहे थे  
कृदालों और गैते की  
हर आवाज पे  
रुक-रुक जाता था  
जिस्मानी नसों का लहू

बाहर भयानक शोर था  
और थी हवा में तलखी  
हजारों जोड़ी मुट्टियों में  
ताकत थी या आक्रोश  
यह तो नहीं मालूम

लेकिन वे नहीं थे  
जो तहखाने के नीचे  
एक दूसरे से लिपटे  
थर-थर काँप रहे थे

और अचानक भर-भराकर  
इतिहास एक बार फिर  
सूने पृष्ठों की तरह  
पसर गया धरती पर  
लिखे जाने के लिए इतिहास  
एक बार और

आज फिर हो रही है खुदाई  
गैते और गंडासे  
फिर चल रहे हैं  
खड़े हैं लोग सांस रोके  
आज कंपकंपी तहखाने में नहीं  
बाहर है  
इतिहास ऊपर नहीं  
नीचे है  
मुट्टियाँ आज हवा में  
तैर नहीं रहीं  
बल्कि चुपचाप  
देह में सरगोशियाँ कर रही हैं  
इसके साथ ही उभर आए  
मिट्टी के ढेर पर  
एक दूसरे के गुँथे हुए  
दो कंकाल  
भीड़ हतप्रभ  
उभर रहा था एक ही सवाल

कौन राम कौन अल्ला?  
कौन किसका कंकाल?  
तभी भीड़ को चीरती हुई  
बेतहाशा हाँफती हुई  
'एवा' ने एक बार फिर चिल्लाया था  
'मेरा आदम मुझे लौटा दो'  
'मेरा आदम मुझे लौटा दो' ।

### कलम को तीर होने दो

शाखें हो गईं कमान, सब कोपल तीर,  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो ।

उगल रही धरती आग है  
धुआँ हमने पीया है,  
बूँद-बूँद को तरसे लोग  
बूँद बहाकर जीया है,  
नदियाँ हो गईं कमान सब पर्वत तीर,  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो

वे लूटने-लुटाने आए  
हम गए परदेश,  
धरती उजड़ी, जंगल उजड़े  
रह गया क्या शेष  
झाड़ियाँ हो गईं कमान सब बिरवे तीर  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो

कोयले की धूप में  
रोपे हैं पाँव  
कांधों पे अपने ही

ढोये हैं गाँव  
देह हो गई कमान सब आहें तीर,  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो ।

ईंटों के भट्टों में  
सीझ गई जिन्दगी,  
रोटी की खोज में  
कहाँ नहीं भागी ।  
बाँहें हो गईं कमान, सब अंगुलियाँ तीर  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो ।

'अंगनई' और 'डमकच'  
नहीं हवा में बोल रहा,  
भूखा है शहर,  
गाँवों को लील रहा,  
गलियाँ हो गईं कमान, सब आंगन तीर,  
देखना बाकी है कलम को तीर होने दो ।

क्या कर लेंगी उनका  
बन्दूक और गोलियाँ  
लाँघते ही देहरी  
जन्मेंगी हजारों कहानियाँ  
नस-नस हो गईं कमान सब लहू तीर  
देखना बाकी है, कलम को तीर होने दो ।

## शशि सहगल

### संतुलन

ससुराल की जिस दहलीज पर  
कल  
मेरा पिता खड़ा था  
आज  
वहाँ तुम खड़े हो  
और कल  
वहीं खड़ा होगा तुम्हारा दामाद  
सोचती हूँ, क्या फर्क पड़ता है  
पीढ़ियों के बदल जाने से  
बाप की ऐंठन  
जली रस्सी-सी  
पड़ी है तुम्हारे सामने  
और तुम  
आत्मविश्वास के पिरामिड से  
सीधे तने हुए / महानता का दम्भ ओढ़े  
खड़े हो मेरे सामने  
तुम्हारा दामाद  
विरासत में पायी ऐंठन और दम्भ को  
और अधिक माँज कर  
खड़ा हो जायेगा हमारे सामने  
तब मैं  
संतुलन का व्यर्थ प्रयास करती

तराजू के कांटे सी  
झुकती रहूँगी  
कभी इधर  
कभी उधर

### सौगात

स्टेशन पर छोड़ने के लिए  
मेरी बेटी ने  
गाड़ी चलते समय कहा  
मम्मी! वहाँ से मेरे लिए कुछ ले आना  
सौगात खरीदना एक समस्या है  
मेरे साथ यह हमेशा ही रहा है

अपनी वही सौगात दे पाता है शहर  
जो होता है उसकी जड़ों में  
अपनी जड़ों से कटा हर शहर  
आज  
मुहताज हो गया है दूसरों का  
होड़ की आपाधापी में  
अपनी मिट्टी की खुशबू उड़ गई है

जड़े से कटा  
पीतल के गमलों में  
जहाँ-तहाँ सजा  
नकली फूलों और पत्तियों से खूबसूरत बना  
कोई शहर  
किसी परदेसी को भला  
क्या सौगात देगा अपनी!

## बेटा

कोख का सुख  
लोक का सुख  
परलोक का सम्भावित सुख  
सभी कुछ पाया / जब बेटा जना मैंने

आशीषों की वर्षा से / भीग उठी मैं  
बेटा पा जी उठी मैं

बीतता रहा समय  
बदलते गये कैलेण्डर  
और आज जब  
बाप का जूता पहना है उसने  
उद्विग्न सी घूम रही हूँ मैं  
खुश होने की जगह  
सहम गयी हूँ मैं बदलाव देख कर

क्यों अपरिचित हो गया है वह  
उसकी छुअन छीन ली है मुझसे  
समय ने  
पूछती हूँ एक सवाल आपसे  
बेटा बड़ा होकर  
आदमी क्यों बन जाता है?

## असर

झाड़ा पोंछा  
दिखने में साफ  
कलफ लगी साड़ी-सा

कड़क व्यक्तित्व ओढ़  
बाहर आना अच्छा लगता है  
ढीले ढाले वजूद को  
घर के पायदान पर ही छोड़  
हीन भावना से उबरती हुई देह  
दो कदम बाहर रखते ही  
आत्मविश्वास से भर उठती है  
कलफ का असर  
कुछ ऐसा ही होता है!

## अहम्

मुझे सच नहीं लगता  
माँ कभी मगरमच्छ के आँसू नहीं रोती  
रोती है उसकी विवशता  
देवदारू सा पिता  
अपने में तना हुआ  
झील में गहराई नापता है

ओस की बूँद का अस्तित्व  
क्षण में समाप्त हो जाता है  
हजारों साल की उम्र  
उस क्षण शरमा जाती है।

## धर्म-ग्रंथ

रात एक सपना देखा  
जाने क्यों  
दिन के बारह बजे भी, मैं / परेशान हूँ  
छूट नहीं पाता वह दंश



काँटे सी कसक  
 जानते हैं मैंने क्या देखा?  
 रैक पर पड़ी मेरी सभी पुस्तकें  
 नीचे गिर रही हैं  
 नहीं, गिर नहीं रही  
 गिरायी जा रही हैं  
 हर मोटी किताब / पतली को देख  
 विद्रूपता से हँसती हुई  
 गिरा देती है उसे नीचे  
 और  
 अभी तक पढ़े सभी वाद सिद्धान्त  
 हाथों में छुरे लिये  
 खुद को बड़ा साबित करने की  
 कोशिश में हैं  
 बीच-बचाव करती हुई मैं  
 लहलुहान होती जा रही हूँ  
 यह क्या? / मेरे लाल खून पर  
 यह काला जहरीला खून  
 चौंक उठी मैं / ऊपर देखा  
 धर्म-ग्रंथ जहर उगल रहा था।

## छाप

कविता एक लड़की है  
 जो पहली नजर में पसन्द आती है  
 धीरे धीरे  
 मन पर छा जाती है!

## अमरजीत कौर रानीमान

### शताब्दी का दर्द

मुनियाँ का बढ़ता हुआ कद  
 अनवरत  
 बापू की कमर को बेरहमी से  
 दोहरा करता चला जा रहा है  
 तख्ती पोतनी कलम स्याही  
 कागज के टुकड़ों के अभाव में भी  
 उसने/ माँ के चेहरे की  
 झुर्रियों की गणना में  
 गणित सीख लिया है  
 वर्जनाओं के कसैले वर्तमान में  
 रह-रह  
 स्मरण हो उठता है उसे  
 गुड्डे-गुड़िया का खेल  
 पर उसे तो बनना है  
 एक औरत

सीता-बनवास  
 द्रोपदी चीर-हरण  
 स्टोव से जलना  
 औरत का ही क्यों  
 तवायफ के कोठे से रिसती  
 लय-बद्ध महीन आवाजें

अल्ट्रासाउंड यंत्र  
नहीं पूछती अर्थ  
अब यदा-कदा माँ से  
ये सब उसे अकसर डराते हैं  
औरत होने का अहसास कराते हैं  
फिर भी बनना है उसे  
एक औरत

गमले में मिट्टी की परत में  
सिमटा बिनौला कितना व्यग्र था  
अंकुरण के लिए

मिट्टी वायु नमी उष्मा  
अब उसे नहीं भाते हैं  
अब वह चुप है  
बच्ची की उदासी देखकर  
बच्ची  
जिसे हरना है एक शताब्दी का दर्द  
बनकर एक औरत।

### कैसे रचते गीत मंहदीले?

कोई बुत्त मेरे अंगना  
वियोग सा तना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले जब संयोग ही  
फना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

वह गई थी ससुराल / तेजस्वी चेहरा ले के  
जब लौटी तो चेहरे पे

अँधेरा घना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

बधाई देने पुत्र जन्म पे  
कैसे हाथ मेरा बढ़ता  
उनका हाथ पुत्रियों के, खून में सना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

व्यर्थ नोचते फिरे इत-उत  
कोर्ट कचहरी / दगा दे गया वही  
जो मेरी माँ का जना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

उनकी अंखियों से दो बूँद  
झरना ही था काफी  
घर ढह गया मेरा जो  
खास मिट्टी का बना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

न्यायाधीश से कैसे  
भला मिलता न्याय  
उनकी अदालत में तो किसी को  
बोलना ही मना था  
कैसे रचते गीत मंहदीले...?

### तीसरा मार्ग

जानती हूँ  
तुम्हारे अधरों का हिलना  
किसी ज्वालामुखी विस्फोट से कम नहीं

फिर भी तुम्हारी  
शून्यता भरी खामोशी  
बिल्लौरी अँखियों की वर्जना  
उस लावे से कहीं अत्यधिक  
सालती है मुझे

दिन भर के अथक परिश्रम से  
जुटाया भोजन  
रात को थाली परसती हूँ  
अकस्मात्  
तुम्हारे चेहरे की शांत लकीरें  
पारा बनकर गिरती हैं थाली में  
मक्खियों की तरह  
विषैला कर डालती हैं  
सारे स्वादिष्ट व्यंजनों को  
और इस तरह जैसे नित्य प्रतिनित्य  
यज्ञ भंग होता है  
किसी विश्वामित्र की साधना का

थक हार कर तुम्हारा हिस्सा भी  
भनका हुआ  
मुझे ही निगलना पड़ता है  
और तुम्हारे अंतस पर चिपका हुआ  
सर्वज्ञता का लेबल  
पूर्णतः तुम्हारी उपस्थिति रिक्त कर देता है

हलक से सरकते ही  
वह आस्फोटक विष  
कुतरने लगता है मेरी अंतड़ियाँ  
और कुतरता रहता है रात भर

भोर होने तक,  
धमनियों और  
शिराओं का होता है मिलन

फिर मेरी अर्धमूर्छित-सी सुबह  
उस ज्वालामुखी विस्फोट को  
कभी तुम्हारी खामोशी को  
किसी एक को चुनने लगती है  
पैदा होती है नदी के दो किनारों में  
सिद्धांतों और अधिकारों की तकरार

लाकर खड़ा कर देती है मुझे  
सांप छछूंदर के दोराहे पर  
तब मर्यादाओं से आच्छादित  
तीसरा मार्ग स्वयं ही खुल जाता है  
तय होता है कविता बनकर!!

### बालक का चिन्तन

अबोध बालक  
तोतली जुबान ने  
माँ से प्रश्न कर डाला  
ओ माँ  
ओ मम्मी  
ओ अम्मी  
ओ बीबी  
मुझे बता, बता दो जरा  
होती है कैसे रंग की गरीबी?  
तुम रात-दिन उसको याद करती हो  
उसकी मार के डर के मारे

या फिर मुझसे ज्यादा  
उसको प्यार करती हो?

जरूर होती होगी  
वह खिलौनों से भी सुन्दर  
चॉकलेट या आईसक्रीम से भी मीठी  
माँ! वह कौन है?

महल और झोपड़ी के बीच की खाई पर  
सुलगता हुआ चूल्हा  
वह जो लौटा देती है  
देहरी पर से दूल्हा  
तब जो बजती है  
बनकर मदारी का डमरू  
वह जो बँधवा देती है  
किसी देवी के पैरों में घुँघरू

वाह माँ! घुँघरू?  
मुझको गरीबी ला दो  
मैं उसके साथ खेलूँगा  
माँ हँस कर कहती है  
हे मेरे पाथ (पुत्र)  
तुम रोज ही तो खेलते हो उसके साथ

माँ मुझे वह कहीं नहीं दिखती  
वह कैसा काम करती है?  
वह कहाँ रहती है?

अत्यधिक परिश्रम है उसका कर्म  
शोषित होते रहना ही है उसका धर्म

दरिद्रता है परिधान उसका  
उपेक्षणीयता जल-पान उसका

बालक ने फिर माँ को टोका  
माँ मैं उसका घर देखूँगा  
बताओ कैसा है?

जर्जर दुर्गधमय  
प्रकाश-हीन संकरी गली  
वहीं जन्मी वहीं पली  
उमड़ आता है जब उसका यौवन अथाह  
हो जाता है उसका फुटपाथ से ब्याह  
फिर विधवा हो या हो सुहागिन  
दम तोड़ देती है वहीं  
तेरे बापू-सी लावारिस  
बिना-कफन

माँ यह बहुत गंदी है  
तुम इसे कहीं छुपा क्यों नहीं देतीं?

माँ हँसती है साथ-साथ खँसती है  
सोचती है विचारती है  
जिन्दगी की पोथी को तिल-तिल बाँचती है  
बालक की ओर ताकती है  
कहती है यह न छुपती  
लाख छुपा ले कोई इसे  
कोने-अतरे में  
मुई! वहाँ से भी झाँकती है

बालक खीझ गया

पर गरीबी सीख गया  
बोला माँ मैं चॉकलेट या आईसक्रीम  
कभी नहीं मागूँगा  
अब तुम सामने वाले घर में  
कभी मत जाना  
मैं समझ गया जान गया  
गंदी की कर दूँगा छुट्टी  
ऐ गरीबी  
जा तुझे मेरी ही नहीं  
मेरे पूरे देश की कुट्टी  
मेरे पूरे देश की कुट्टी!!

## अनुभूति चतुर्वेदी

### दो श्रावणी कविताएँ

(1)

यह भीगी हुई चादर हटा कर  
अपनी प्रचंड ऊष्मा के साथ सामने आओ,  
हे सूर्य! और मुझे आलिंगनबद्ध कर लो!

विश्व ने कब गर्भ दिया है  
किसी वसुंधरा को  
सिर्फ छला है, बाँटा है, रौंदा है  
बीघा-बीघा स्वामित्व  
ये व्यापारी, / ये ग्राहक क्या मुझे प्रेम देंगे?

हे सूर्य,  
बाहर निकलो इन श्रावणी परदों से  
और अपने प्रचंड प्रकाश में मुझे रोम-रोम  
नहला दो  
छुओ मुझे अपनी प्रेम-ऊष्मा से  
और पूरे विश्व के सामने  
अंकुरित करो मेरे स्वप्न-शिशु!

(2)

एक भीगे हुए मौसम की  
दस्तक है यह

या किन्हीं अचिन्ह आकांक्षाओं की  
कब आँख झपक जाये,  
कब मौसम बदल जाये कौन जाने  
पर क्या मेरी ये आकांक्षाएँ  
भी बदल जाएँगी?

नारी और नारीत्व के नारों के बीच  
कितना कठिन हो जाता है न  
समझना खुद को?  
पर तुम शायद मुझे मुझसे बेहतर जानते हो  
और शायद बादलों को भी  
जिनके गरजने में भी रोमांच है  
और बरसने में भी  
पर क्या तुम कभी इतने भीग पाये हो  
या इतने शुष्क रह पाये हो  
जितनी मैं

तुम मौसम बदल सकते हो  
तुम दृश्य बदल सकते हो  
तुम मुझे भी बदल सकते हो  
लेकिन क्यों?

### एक खरगोश का विद्रोह

तुम्हारे साथ कायम करना था  
मुझे  
एक सहज सम्बन्ध  
और अपेक्षा की थी  
एक उफनते पुरुष की नहीं  
एक साथी की

जो समझे मेरा मन  
और मेरा मुक्त क्षण

लेकिन तुम कैद रहे  
उस बासी कुएँ में  
जिसकी दीवारों पर अंकित है  
घायल नारी की दास्तान  
एक भूखे कीड़े की तरह कुतरते रहे  
सहज सम्बन्धों की बुनियाद  
क्या मुझे  
छिद्र-छिद्र जीना होगा?

नहीं  
उसे गुराना होगा ऐसी सांसों पर  
जिसमें उसका दम घुटता है  
उसे उतार फेंकनी होगी कोमल त्वचा  
और नुकीली हड्डियों से लिखना होगा  
अपनी गुलामी का इतिहास  
अपनी चेतना की उपज  
और निर्मित करना होगा  
एक खुला आकाश

शायद ऐसे ही किसी क्षण में  
किसी खरगोश ने किया होगा विद्रोह  
और उसकी हड्डियाँ  
जिस्म से बाहर निकल आयी होंगी  
तभी काँपा होगा कोई महाराक्षस  
और विस्फोट हुए होंगे  
अंधे कुंओं के भीतर!

## क्रांति

कागजों में पिरोये शब्द  
एकजुट होकर  
बना सकते हैं  
एक महाकाव्य  
और मचा सकते हैं क्रांति  
पर  
तोपें केवल फेंक सकती हैं गोले  
मचा सकती हैं कोहराम  
पर दे नहीं सकती  
शांति का पैगाम!!

## आम आदमी

रातों-रात  
जब बिजलियाँ कौंधती हैं  
और  
काटे चीरती चली जाती हैं  
सड़कें  
तब भी जागता है कोई  
चुपचाप  
बनाता है पथरीले रास्ते  
कंकड़ों को संजोते हुए  
वह भूल जाता है  
कि मौसम कभी सुहावना  
कड़क और सर्द भी होता है

दूर से उसका बच्चा  
चीथड़ों में सुबकता है

उसकी चीत्कार दीवारों से टकराकर  
कहीं खो जाती है  
सड़कें बन जाती हैं / रातों-रात

कितने मजबूत हैं वे हाथ  
जो बनाते हैं सड़कें राजपथ  
उन्हीं पर हम  
अठखेलियाँ करते गुजर जाते हैं  
भूल जाते हैं उनकी अथक मेहनत!!

## सृजन

हजारों खून के कतरे  
गिरकर / बनते हैं शब्द  
और एक खूनी नदी में  
मथकर / डूबकर  
होता है सृजन!!

## समाज

दूर रोता रहा वह बच्चा  
समाज से लड़ता रहा चुपचाप  
माँ बेबस थी!!

## वाल्याचक्र

औरत बदहवास  
कपड़े तितर-बितर  
कंधे पर बच्चा  
थका शरीर

देखती है आस-पास  
माँगती है थोड़ा बहुत पेट भरने को

लेकिन  
कौन देगा  
कोई उसका अस्तित्व ही नहीं  
संरक्षण नहीं  
असुरक्षित घूमती है वह / बहशी निगाहें  
दौड़ती हैं उसके चारों ओर

गुजर गई उम्र  
आ गया यौवन का उतार  
शिथिल जर्जर देह  
बच्चों के भाग्य को कोसती  
समाज से लड़ती

आज अंतिम क्षण में  
चुपचाप / खड़ी है शिवालय में  
आशा नहीं बचने की  
कहाँ से लाए अपना कफन?

### महाकाव्य का जन्म

उसने शुरू की थी यात्रा  
बिन्दु से / बिन्दु बढ़ते-बढ़ते  
एक आकार में बदल गया  
और अपनी परिधि / लांघकर  
एक शताब्दी का महाकाव्य  
बन गया!!

## माया प्रसाद

### किताब दर्द की

मेरे अनजाने में  
मेरे सिरहाने  
रख गया है कोई  
एक किताब दर्द की?  
किताब जिसके हर सफे पर  
लिखी हुई है  
किसी गंधारी किसी कुंती  
द्रौपदी या उत्तरा की  
आँसुओं से भीगी जीवन-कथा

जब भी दुनिया के  
किसी कोने में  
बंदूकें मौत बाँटती हैं  
परखचे उड़ते हैं  
इन्सानियत के  
किताब के पन्नों से  
निकलकर खड़ी होती है  
गांधारी मेरे समक्ष  
आँचल खींचकर पूछती है मुझसे  
बता मुझ शतपूती को  
निपूती किसने किया?  
और मैं उन आँखों के



गंगा जल में अपनी  
आँखों का खारापन घोलती  
निर्वाक रह जाती हूँ  
कभी-कभी दबे पाँव  
बाहर आती है कुन्ती  
दीवारें भी न सुनें  
ऐसे फुसफुसाती है  
कल रात नकली मुठभेड़ में  
मारा गया जो निहत्था  
वही तो था मेरा कर्ण  
हाय! मैं उसे बेटा कहने का  
साहस संजोऊँ हत्यारों ने  
इससे पहले ही चिन दी  
मेरे लाल की चिता

बात द्रौपदी की कहूँ?  
हाथ में द्रोण-सुत के  
शीश की मणि लिए  
सूनी आँखों से  
निहारती खड़ी है वह  
उत्तरा की उजड़ी हुई माँग  
सूनी कलाइयाँ  
नहीं-नहीं मणि में  
नहीं देख पाती वह  
अपने रण बांकुरे अभिमन्यु का  
गर्वोन्नत मुख  
बड़ी लम्बी है उसकी जीवन-कथा  
उम्र भर गुड की भेली-सी  
पाँच पतियों में बँटती  
सुलगते अक्षरों से वक्ष पर

वस्त्र हरण की त्रासदी लिखती  
पांचाली अक्सर पूछती है मुझसे  
बात! क्या सच ही  
महाभारत मैंने माँगा था?

और उत्तरा?  
मृत्यु और जीवन की  
संधि-रेखा सी  
प्रतिध्वनित हैं जिसके मौन में  
शत-शत ज्वालामुखियाँ  
नहीं, कदापि नहीं  
मैं किसी भविष्य के  
महाभारत को नहीं देती  
अपना परीक्षित नहीं देती

सच मानो  
मैं ये किताब  
पढ़ना नहीं चाहती  
क्योंकि भारी मन लेकर  
इस हल्की दुनिया में  
जीने की जिद्द  
छोड़ दी है मैंने  
पर क्या करूँ  
सिरहाने से जुड़ी  
ये दर्द की किताब  
हर करवट पर फड़फड़ाती है  
और गाहे-बेगाहे  
पढ़ने को मजबूर  
कर जाती है!!

## कठपुतलियाँ सोचती हैं

जाने कैसे हुआ ये चमत्कार  
कि डोरी से बँधी कठपुतलियाँ  
सोचने लगी हैं बार-बार  
काश, तेज आँच जगे  
किसी कठपुतली के सीने में  
और सुलग उठें डोरियाँ,  
झुलस जाएँ सूत्रधार की उँगलियाँ  
और आजाद हो जाएँ,  
नाच-नाचकर थकी  
सबकी सब कठपुतलियाँ।

आजादी चाहती हैं कठपुतलियाँ  
मगर हर बार,  
जलते ही एक डोरी के  
कस लेती है कोई दूसरी  
कठपुतलियाँ बेचारी,  
सीने में आँचल लिए  
थिरकती रहती है निर्वाक्  
नए सूत्रधार की  
ऊँगलियों के इशारे पर।

कठपुतलियों की  
आजादी की बात सुनकर  
देर तक ठहाके भरता है  
नया सूत्रधार  
कठपुतलियाँ और  
आजादी!

## तीसरी कोंपल कथा

दो बेटियों के जन्म से  
निचुड़ी हुई माँ  
कुछ और निचुड़ गयी,  
चेहरे की झाँझियाँ गहरा गयीं  
अपराध-बोध से  
अभी-अभी परिचारिका  
लिटा गयी है उसके पार्श्व में  
एक नन्हीं सी कोंपल।  
घर की बड़ी-बूढ़ियों के जुटाए  
तमाम गंडे-ताबीजों को  
निष्फल करती,  
जवानी में ही झुक आए  
पिता के कंधों को  
कुछ और झुकाती  
घर और बाहर के मौसमों से  
बेपरवाह, उग आयी है  
यह मूँगिया कोंपल।

अपनी जन्मदायिनी का  
आँसुओं से भीगा चेहरा  
नहीं पढ़ पातीं उसकी  
भोली-अधखुली आँखें।  
उसे यह भी नहीं मालूम  
कि कोई काँसे की थाली  
नहीं बजी उसके उगने पर,  
हिजड़े पँवड़ियों ने नहीं  
पाया कोई बधावा।  
अपनी नन्हीं सी मुट्टी में

कसकर थामती है वह,  
माँ का दूध से भीगा आँचल

पूछना चाहती हो जैसे  
माँ! कोपल भी कहीं  
मादा या नर होती है?  
माँ कुछ कहे तो कैसे?  
कहना चाहती है वह  
नहीं नहीं, कोपल तो  
कोपल होती है।

## हेमलता

### मेरी दादी ने कहा था

गाँव के पुराने ओसारे में  
जाँता पीसती दादी ने  
कहा था  
अच्छी लड़कियाँ  
उछलती-कूदती नहीं ज्यादा  
बातें नहीं करतीं  
जोर-जोर से हँसती नहीं

करती हैं घर के काम-काज  
सीना पिरोना गुनना, बुनना आता है  
सीता सावित्री सी बनती हैं

दादी नहीं रही  
मेरी पीढ़ी के लिए  
एक प्रश्नचिन्ह शेष रहा  
उनकी आँखों में/आखिरी वक्त तक  
नहीं रही दादी

मशीनों के बीच करती हूँ काम  
चूल्हे से रिश्ता कायम है  
बदस्तूर  
अच्छी लड़की होने की प्रक्रिया से

गुजर रही हूँ शायद  
पर सहन नहीं करती  
पुरुष की किसी खास पहचान को  
टकराती-टूटती और तोड़ती हूँ  
इस पहचान को  
दादी की सीता छोड़ती नहीं पीछा  
ढोती हूँ  
दादी की परम्पराओं का बोझ  
सहला जाती है  
उन्मुक्त हँसी  
पोती की  
ढेरों सवाल पूछती है  
समझती हूँ  
बनना है मैत्रेयी गार्गी  
बढ़ना है सबसे आगे  
लड़कों से भी  
हाँ सबसे आगे  
आश्वस्त है मेरी पोती  
खूब उछलती है  
खूब कूदती है  
मानती नहीं हार  
कभी भी  
चमक उठती हैं  
आँखें मेरी  
दादी के प्रश्नचिन्ह ने  
छोड़ दिया है मेरा पीछा  
मुक्त हूँ अतीत से  
खुश हूँ  
मेरी पोती  
अच्छी लड़की है।

## औरत और गुलाब

सुर्ख और लुभावने गुलाब  
हरे पीले सफेद गुलाबी  
हर रोज  
उगते  
न जाने कितनी  
नई किस्मों के गुलाब  
  
रोज एक नई अदा  
सम्मोहन के साथ  
औरत को अपने पास बुलाते गुलाब  
तंग गलियों में  
खुले चौराहों पर  
ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर  
फुटपाथ पर  
बड़ी दुकान में  
ये बिकते गुलाब

## कल्पना सिंह

### स्ट्रीट की लड़कियाँ

वे चौराहा थीं  
जहाँ से भिन्न-भिन्न दिशाओं से  
आने के मार्ग तो निर्धारित थे  
पर वे स्वयं कोई मार्ग या गंतव्य नहीं थीं

कोई राह चलता मुस्कराता  
उनका पता बताता,  
तो वे जैसे  
लड़कियों से सहसा पौध  
और फिर पौध से सहसा  
वृक्षों में बदल जातीं

तीव्र-गंधा पुष्पों वाली  
जो सारा दिन देखती हैं  
अपने दरीचों और मुँडेरों पर बीतता  
अपना सूरज

और जगमगाती हुई रोशनी से निकलकर  
अपनी सीढ़ियों पर चढ़ती रात  
हर रात

रात बीतती है

पर चुकती नहीं  
सूरज डूबता है  
पर मरता नहीं  
बस हर साँझ दुबक जाता है  
वहीं कहीं उनके आसपास  
या किसी लड़की के  
जाफरानी दुपट्टे के पीछे  
उसके धड़कते सीने में  
फिर रात भर तिलमिलाता है

रात थकती है  
सूरज तिलमिलाता है  
और लड़कियाँ

किसी थके हुए एक लम्हे में देखती हैं  
अपने थकते पाँव  
और तब, उनकी आँखों में उतर आता है  
उनका शहर  
अथवा गाँव  
और अपने घर की  
एक धुँधली सी याद

आँगन में बैठकर माँ ने कभी  
उनकी खनकती हुई हँसी-सी  
एक पायल पहनाई थी उनके पाँवों में  
याद आता है उन्हें

उस पायल के नन्हें नूपुर  
अब कितने विकसित हो गए हैं  
क्या पता होगा माँ को

उसकी करुण आँखें तो  
अब भी ताकती होंगी द्वार  
नन्हें-नन्हें नूपुर बँधे  
नन्हें पाँवों की प्रतीक्षा में  
पर इससे आगे  
भला कब कहाँ सोच पाई लड़कियाँ?  
जब भी सोचना चाहा  
हर बार एक बहस उनके इर्द-गिर्द  
तेज होती चली गई  
हर बार अधूरी रह जाने वाली बहस

अपने औचित्य और अनौचित्य  
के हिंडोले पर  
एक बार फिर जाकर झूलने लगती हैं  
लड़कियाँ  
तेज और तेज खूब तेज  
कहकहों के आतिश में झुलसती  
चली जाती हैं लड़कियाँ  
तीव्र-गंधा में जैसे  
एक बार फिर बदल जाती हैं लड़कियाँ  
हर रात खुद पर से  
एक नया पतझड़ गुजार देने के लिए

ईश्वर जाने  
कि हर सुबह पतझड़ के मारे  
उनके पत्तों की जगह  
फिर कोई नया पत्ता  
कैसे उग आता है  
कि उनका हर जख्म  
बगैर किसी मरहम के

कैसे भर जाता है

अभिशाप होती हैं ये लड़कियाँ?  
वरदान होती हैं ये लड़कियाँ?  
होती हैं पुतलियाँ?  
सामान होती हैं ये लड़कियाँ?

चीखती हैं पर क्यों हमारी तरह ये  
कोई भी तो नहीं कहता  
मनुष्य होती हैं ये लड़कियाँ?

## मीना भारती

### सबसे बड़ा मजाक

बीमार होती हुई भी  
बदमिया  
बाल-बच्चों की  
ममता से विवश  
बनिहारी करती  
जी रही थी  
कितने सपने पालती  
उम्र के बसंत में ही  
बनकंडा बन गई थी  
फिर भी/अपने बच्चों को  
डिढैना लगाना  
भूलती नहीं थी कभी  
घर बसाने वाली  
सिरजन करने वाली  
औरत  
इक्कीसवीं शती की दहलीज पर  
पहुँचे विश्व में भी  
मकड़जाल में फँसी  
निवाला बनती हुई  
औरत  
मावर्स और गाँधी के साथ  
इससे बड़ा मजाक और क्या होगा?

## मंजु गुप्ता

### हमे वंध्यात्व दो

घर में अखबार में  
यहाँ-वहाँ रोज  
कोई न कोई जल रही है औरत  
  
प्रसव-वेदना से तड़पती  
दूसरी औरत  
कर रही है प्रार्थना  
नहीं देना बेटी भगवान  
नहीं देना बेटी  
हम नहीं हैं इस लायक  
कि बेटी का कर सकें स्वागत  
मेरी बेटी को  
किसी ने जला दिया आग में  
तो....?  
  
भावी आशंका से त्रस्त  
पहली बार माँ बनी औरत ने  
जन्मते ही बच्ची का  
दिया गला दबोच  
कैसे माँ बन गई  
पुत्री-हन्ता?  
सब हैरान....!

जहाँ

बेटी का जन्म  
औरत की ममता का  
सबसे बड़ा अपमान  
ऐसे देश में ऐसे परिवेश में  
क्यों बनेगी  
कोई भी औरत माँ  
क्यों सहेगी वह प्रसव की पीड़ा  
क्यों क्यों?

नहीं चाहिए  
दूधो नहाओ पूतो फलो  
का वरदान  
देना है तो दो  
'बंध्या बनो' का श्राप

जलने पर बेटी के  
होगी जो पीड़ा  
उससे कहीं बहुत कम है  
बंध्या कहलाने का दर्द

हे भगवान  
हमारी कोख सुखा दो  
मातृत्व-वंचित कर दो  
पीड़ा से मुक्ति दिला दो  
और नहीं तो  
देना है कोई वर तो  
'जन्मे कोख रुपया'  
ऐसा वर दो

हमें बंध्यात्व दो  
हमें बंध्यात्व दो!!

### भेड़िया और भेड़ें

जनतन्त्र में  
जन-भेड़ों के  
रेबड़ को हांक  
भेड़िये  
इन्सानी लिबास में  
कर रहे हैं  
भेड़ों का प्रतिनिधित्व  
क्या भेड़ें  
इस साजिश को समझ  
अपने फैसले  
खुद करेंगी?  
या  
अपने को भेड़ियों के जिम्मे  
सौंप  
जिबहा हो जाएँगी?



## शैलप्रिया

### आत्मकथ्य

कविता  
सहेली की शाल नहीं  
जिसे मौसम के मुताबिक  
माँग कर लपेट लिया जाय।  
कविता मेरा मन है, संवेदना है,  
इससे फूटी हुई जीवन धारा

कविता मैं हूँ  
और वह मेरी सृजनशीलता है  
मेरी कोख  
और मेरी जिजीविषा का विस्तार  
है कविता।

इससे अधिक सही और सच्ची  
कोई बात मैं नहीं कह सकती।

### आग का अक्षर

अकसर हम धूप में  
चढ़ा लेते हैं रंगीन चश्मे  
और धरती रेत हो जाती है  
पिघलते सूरज का उमगना

नहीं देख पाते  
सच और झूठ के बीच झूलते  
धूपछांही परदे  
पुरानी इमारत के झाड़-फानूस की तरह  
बदरंग लगते हैं  
और इधर हमारी जंग शुरू हो जाती है  
जब कोई औरत  
संवेदना के टूटे तार जोड़ती  
अपनी पेबन्द-सी  
जिन्दगी की किताब  
पलट देती है  
तब मैं दुख के पन्नों पर अंकित  
अक्षरों में शामिल  
एक अक्षर बन जाती हूँ  
आग का अक्षर॥

### आमंत्रण

आओ, हम फिर शुरू करें  
आजादी का गीत  
कि खुले कण्ठ से स्वरो को सांचा दे  
कि हमारी आकांक्षाएँ  
पेड़ों के तले  
मगर पिंजरे में कैद  
पंछी बन गयी हैं  
आकाश के उन्मुक्त फैलाव से  
उनके रिश्ते कट गये हैं

आओ हम फिर शुरू करें  
आजादी का गीत

कि हमारी चोंच पर पहरा है  
बहेलिए के जाल का  
आओ हम बंधक पंखों को झटक कर  
मोर की तरह नाचें  
अपने कोटरों से बाहर आएँ  
डर के पंजों से मुक्त होकर गाएँ  
दुख-सुख को मिलजुल कर बाँटे  
दमघोंटू धुआँ काटें

आओ हम फिर शुरू करें  
आजादी का गीत!!

## अर्चना चतुर्वेदी

### एकाकी मन

लियोनार्डो दा विंची का जीवन  
कैद हो गया  
मोनालिसा की मधुर मुस्कान में  
जब मैंने टटोला  
देखा चीर-चीर कर  
जाले, धुंध और अपना आसपास  
तो जिंदगी की अँधेरी दरारों से झाँकते  
चेहरों के बीच  
एक चेहरा तुम्हारा था  
गहरे आवेग से दीप्त  
समय ने जिस पर लिख दिया था 'मौन'  
अनायास मिले थे हम तुम  
उस दिन  
और पैदा हो गयी थी  
तनाव की एक सुन्दर झील  
मस्तिष्क के किसी खूबसूरत कोने में  
तुम्हारे वजूद में ढेरों उलझनें थीं  
झील की गहराई और समुद्र की खामोशी  
नापी थी मैंने  
तुम्हारी आँखों में  
मैंने तुमसे कुछ पूछना चाहा  
लेकिन, तुम्हारी खामोशी मुझे तुमसे

कोसों दूर ले गयी  
 कूच कर गये मेरी बुद्धि से कुशलता के  
 सभी ऋषि मुनि  
 और हम निरंतर लगाने लगे डुबकियाँ  
 तनाव की उस सुन्दर झील में  
 बिना सोचे-समझे  
 अब 'उम्र' भर क्या यही सिलसिले  
 चलते रहेंगे?  
 और मैं लड़ती रहूँगी  
 अपने आप से  
 काश! ये दूरियाँ कम हो जातीं  
 राहें निरन्तर हो जातीं  
 मेरी लक्ष्यहीन यात्रा  
 जिसमें मैं अपने एकांत का दुःख झेल रही हूँ  
 अस्तित्व में अनस्तित्व का बोध  
 जैसे एक दूरागत नदी अपनी धारा-यात्रा  
 समाप्त कर  
 सागर में विलीन हो  
 अस्तित्व खो बैठती है अपना  
 वैसे ही  
 अनस्तित्व के सागर में विलीन हो  
 अपनी अस्मिता खो बैठी हूँ मैं  
 अब मेरा 'मैं' नहीं है  
 स्वयं को प्राप्त करके भी अप्राप्त हूँ  
 साकार होते हुए भी निराकार हूँ  
 न्यूज पेपर्स और टेलीविजन में  
 आने वाले हर समाचार का आज  
 मुख्य बिन्दु है अस्तित्व-रक्षा  
 लगता है  
 दिनरात महानगर की भीड़ों का

दुर्वह भार सहने वाली  
 ये सड़कें अब  
 घबरा उठी हैं शायद  
 क्योंकि  
 उस पर चलने वाले अधिकांश यात्री  
 अपनी अस्तित्वहीनता में ही चल रहे हैं  
 लुभावनी संभावनाओं की छलना में  
 या शायद अपने ही अहंकार की  
 भूल-भुलैया में  
 न जाने कहाँ  
 किस लक्ष्य की ओर  
 मैं भी उन यात्रियों में से एक हूँ  
 जो अपना अस्तित्व खोकर  
 निराकार होने का दुःख अपने  
 भीतर छिपाये चली जा रही हूँ निरंतर  
 घायल मृगछौने-सी  
 लगता है मुझे  
 सड़कें ठहरी हुई हैं  
 और मैं चल रही हूँ  
 एकाकिनी!  
 निरुद्देश्य!  
 अहर्निश!

### थकान

बहुत थक गई हूँ  
 तुम्हें आवाजें दे देकर  
 लगता है, कि अब मेरी आवाज  
 तुम्हारे घर की दीवारों को  
 लाँघ नहीं पाएगी

और माथा पीटकर लौट आएगी  
 मैं नहीं जोड़ा जाऊँगी  
 तुम्हारे अंतर्मन से  
 अपनी सतरंगी कल्पनाओं के तार  
 जब भी पड़ती हूँ अखबारों में  
 मानव द्वारा/चंद्रमा के धरातल को  
 छू लेने का रोमांच  
 मेरा मन मुझे ढूँढ़ने नहीं देता  
 कोई दूसरा चन्द्रमा  
 याद आता है मुझे अपना गाँव/अपना बचपन  
 वे चाँदनी रातें/नानी की बातें  
 फलों के बाग/फूलों से लदा अमलतास  
 उड़ती हुई चिड़िया/ठंडी रेत  
 और शाम के समय  
 नदी किनारे सूरज का डूबना  
 यदि सुन सकते हो तो सुनो  
 मेरे पास अब शेष हैं चंद्र साँसें/लंबी आँहें  
 जो कहती हैं कि जीवन थकने लगा है  
 कदम रुकने लगा है और  
 जो आँसू थे वे भी सूख गये/कैसे और कब  
 नहीं मालूम  
 हठीली लगने लगी मुर्गों की बांग  
 थक चुकी हूँ प्रतिवर्ष/नया कलेंडर टाँग  
 नैतिकता की नुमाइश में/ऊँघते हुए  
 सपनों को सूँघते हुए  
 सुखी रहने का हर्ष  
 यानी नववर्ष  
 तनावों के समुद्र में डूबते उतराते  
 निरीह जिंदगी का जीते चले जाना  
 लेखनी से

अनायास फिसलते हुए शब्दों का  
 कविता बन जाना और  
 बर्फ-सी खामोशी में आवाजों का  
 टकराते जाना  
 अब नहीं सह सकती  
 तानाकशी के साथ-साथ  
 रात-दिन फिर रात का होना  
 हर बार खेली है भाग्य ने  
 मुझसे लुक्का-छुप्पी  
 ऊब चुकी साधे हुए चुप्पी  
 हर जगह एक लंबी क्यू  
 खासकर उसमें अपनों को पहचानना  
 अब नहीं सह सकती  
 यद्यपि सूने रेतीले जीवन में  
 मृगतृष्णा-सी  
 आशा की किरण  
 प्रोत्साहित करती है मुझे ऊपर उठने को  
 रास्ते को चिरंतन करने को  
 और मैं खींचने लगती हूँ रेत पर  
 अपनी इच्छाओं की लकीरें  
 सहसा हवा का तेज झोंका  
 मिटा जाता है  
 मेरी इच्छाओं की उन लकीरों को  
 फिर भी विवश मैं  
 छोड़ नहीं पाती लकीरें खींचना  
 हर रात/अंधेरे की पर्तें हटा-हटा कर  
 ढूँढ़ती हूँ/अपने जीवन की  
 उस एकमात्र सुबह को  
 सोचती हूँ  
 तुम आओगे शताब्दियाँ उलीचते हुए

निरन्तर गूँजती हैं मेरे मस्तिष्क में  
 तुम्हारे मासूम प्रश्नों की चीखें  
 और मैं अपना मानसिक संतुलन खोकर  
 भयभीत हो जाती हूँ नियति के जाल में  
 तभी हृदय पर पड़े गहरे जख्म दर्द करने  
 लगते हैं  
 जख्म/जो माँगते हैं शेष हिसाब  
 उस कहानी का  
 घटनाएँ जो करती हैं बाध्य  
 उन्हें रिसने को  
 और अनायास ही चुप हो जाते हैं  
 वे सभी प्रश्न  
 जिनके उत्तर शायद हर सदी बदलते हैं  
 तन्हाइयों में उलझतीं सांसें  
 विवश हो जाती हैं/चुनने को  
 भावनाओं के 'फूल'  
 जिनकी खुशबुओं में डूबी हैं मेरी तन्हाइयाँ  
 मेरा अकेलापन  
 जो देता है मुझे सदैव/भ्रम के नुकीले काँटे  
 मैं ओढ़ लेती हूँ/क्षण भर को  
 मुस्कान की चादर  
 मेरी भावनाएँ करती हैं अठखेलियाँ  
 मेरी चेतना से  
 क्षणभर को मैं सिहर उठती हूँ  
 आँखों में नमी और हृदय पर बोझ लिए  
 कुछ शब्द/चुपचाप धीरे से  
 दबे पाँव  
 दिमाग से कागज पर उतर आते हैं  
 जिसे लोग कविता कहते हैं!!

## कविता सिंह

### चार गीत

(एक)

मैले कपड़े-सा खूँटी पर  
 टगा रहा दिन

घने अँधेरे के डर से मुँह  
 धोया मैंने  
 अहसासों का सूखा चना  
 भिगोया मैंने  
 लेकिन चेहरे पर धब्बे-सा  
 लगा रहा दिन

बिना कसूर सजा पायी है  
 कानूनों से  
 खींची गयीं लकीरें तन पर  
 नाखूनों से  
 नशाखोर आँखों जैसा पर  
 जगा रहा दिन

उठने लगा धुआँ तुलसी के  
 चौबारे से  
 रोशनियाँ जीतेगी गहरे  
 अँधियारे से

बेगैरत था, लेकिन बनकर  
सजा रहा दिन।

(दो)

जीवन फटी पतंगों-सा है  
जिसकी डोर कहीं

इस दहशत से भरे समय से,  
ऊबा मन मेरा  
गहरे अवसादों में गहरे  
दुर्घटना इस तरह हमारे  
चारों ओर घटी

बढ़ती मंहगाई नस-नस में  
जहर उतार रही  
छीना झपटी चोरबाजारी  
ताने मार रही  
हर पत्तल पर लगती डर की  
कड़वी झोर बँटी

क्रूर विषमताओं की हमने  
इतनी मार सही  
मन के अन्दर नफरत की ज्वाला-सी  
धधक रही  
मगर सुबह अँधियारे से है  
दाँत निपोर सही।

(तीन)

कितनी बार कहा है  
कभी पधारो मेरे गाँव

यहाँ मिलेंगे काले तन  
मैले कपड़े-लत्ते  
खुशबूदार हवा दहशत से  
डोल रहे पत्ते  
वरद हथेली जैसी  
फैली है बरगद की छाँव

टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी जाती  
है खेतों तक  
गूँज रही जिसके कानों में  
बाली की दस्तक  
हर विपरीत हवा को  
जो देती रहती है छाँव

तुम्हें चना, जौ, सरसों, तीसी  
पास बुलाएँगे  
अरहर के पौधे झुक-झुककर  
गले लगाएँगे  
जीने की इच्छा जैसे  
जलते हैं यहाँ अलाव।

(चार)

क्या होगी पहचान हमारी  
खोदी गयी यहाँ फिर भाई  
भेद-भाव की गहरी खाई  
जिस खाई में गर्क हुई है  
अभिलाषा वीरान हमारी  
चारों ओर यहाँ जब फैला  
है नफरत का धुआँ कसैला  
इस जहरीले मौसम को है

भेंट चढ़ी मुस्कान हमारी

गहराया इस तरह धुँधलका  
सोचो कैसे जीने की  
शर्ते होंगी आसान हमारी।

## चम्पा वैद

### चाँद

वह पैर के अँगूठे के नाखून सा  
खड़ा  
मेरे बाएँ  
अकेला

वह उस हँसली सा  
हँसता  
खड़ा  
शापग्रस्त

वह खरबूजे की फाँक सा  
खड़ा  
तिरछा देखता  
आँगन के बीच  
जहाँ लेटा है बच्चा हाथ-पाँव मारता

वह गाय के खुरन्ता  
लटका  
चोरों और चमेली को  
रास्ता दिखाता  
मेरे कान में कुर्र करता  
मुझे चौंकाता है

## नदी

नदी में आत्मा है  
तभी वह तड़पती रहती है  
नदी में दया पलती है  
वह सूरज को अपने में समेट लेती है  
और मेरे शब्दों में बहती है

## थोड़ी सी उदासी

चक्की में पिसते दानों की पीड़ा  
महसूस हुई अनायास  
दुःख के दरख्त खड़े हो गये  
मैं हो गयी उदास  
ठंडा पानी पी  
थोड़ी सी उदासी को  
गिलास में छोड़  
लिखने बैठ जाती हूँ  
वह फुदक रही है मेंढक सी

## कुछ पुराना याद आ रहा है

एक दीवार  
खड़ी हो रही है  
एक दीवार दौड़ रही है  
कोई कुछ चुरा ले गया  
तनाव हँस रहा है  
दीवारों पर बच्चों की कूद-फाँद  
हँसी बन्द हो रही है धीरे-धीरे  
कुछ पुराना याद आ रहा है

## बहुत रह लिया साथ

सोच ने कफन तान लिया है  
रसोई राज कर रही है  
बादल पसलियों से  
शरीर से झाँक रहे हैं  
मैली मलमल के घर में  
हम बाँध दिये गये हैं  
बहुत रह लिया साथ  
अब मन करता है  
कहीं खिसक जाने की

## आधी रात है

आधी रात है  
दिल हंगामा मचाये है  
पेट में एसिड की सीटी  
स्वप्न के कुछ टुकड़े  
किसी कमरे में बैठी वह  
उसका आलाप-प्रलाप सुन रही है  
ग्लेशियर सी  
धीरे-धीरे फिसलती पिघलती



## मणिका मोहिनी

### पुत्र के प्रति

मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर  
पैदा हुआ था मेरा बेटा  
इसीलिए  
जिस काम में हाथ डालता है  
सोना हो जाता है  
मैं उसे दुलारती हूँ  
सौभाग्यशाली हो, पुत्र  
वह इठला कर कहता है  
नहीं बुद्धिमान हूँ  
जैस-जैसे वह सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ रहा है  
उसकी आवाज की बुलंदी चढ़ रही है  
मैं कुछ भी कर सकता हूँ  
मैं कहीं भी जा सकता हूँ  
मैं जो चाहूँ पा सकता हूँ  
मैं किसी के हाथों टूट नहीं सकता  
मैं किसी के रोके रुक नहीं सकता  
मैं अजेय हूँ  
मैं अपराजेय हूँ  
क्योंकि मैं मैं हूँ  
मैं मैं मैं  
अहम का धीरे-धीरे अहंकार होता रूप  
मुझे भयभीत करता है

मैं उसे समझाना चाहती हूँ  
पुत्र!  
तुम कितनी भी ऊँचाई पर जाओ  
यह हमेशा याद रखना  
कि तुम चाहे जो भी हो  
ईश्वर नहीं हो  
कोई होता है ईश्वर  
जो दिखाई नहीं देता  
सुनाई नहीं देता  
जिसे महसूस करके ही  
जाना जा सकता है  
जानना जरूरी है इसलिए कि  
हम स्वयं को  
सर्वशक्तिमान मानने के  
भ्रम से बचे रहें  
कि अहंकार न छुए हमारी चेतना को  
कि और भी बहुत कुछ  
जो संतुलन के लिए जरूरी है  
आता है यह सोचने से  
कि हमसे ऊपर भी कोई है  
जैसे कि ईश्वर  
पर वह मुझे  
समझाने का मौका दिए बगैर  
चढ़ जाता है एक सीढ़ी और  
देखो माँ!  
मैं कितना ऊपर हूँ  
मैं ही ईश्वर हूँ  
क्योंकि मुझे रचनी आती है  
अपनी दुनिया

मैं दोनों हाथ ऊपर उठा कर  
आँखें बन्द करके बुदबुदाती हूँ  
प्रभु उसकी रक्षा करना  
उसके युवा जोश को क्षमा करना

आँखें खोलती हूँ तो देखती हूँ  
वह एक सीढ़ी और चढ़ गया है  
तथा मेरे हाथ  
उसी की ओर उठे हुए हैं!!

### सरकारी दफ्तर

कैसे-कैसे नमूने  
सरकारी दफ्तरों में सजे हैं  
नमूनों के सिर पर  
सींग नहीं होते!

सरकार में रहते-रहते  
सड़ गए / पर बदबू  
कहीं भी नहीं फैली!!

बड़े अफसरों के इर्द-गिर्द  
सरकारी तामझाम है  
छोटे / झुनझुनों से खुश हो लेंगे!

सब उसकी पूँछ पकड़ कर  
पार होने की कोशिश में हैं

वह चीफ नहीं  
चीफ का चमचा है!!

बेरोजगारी खत्म करने के नाम पर  
बहुत सी खलकत भरी पड़ी है  
सरकारी हलकों में  
छंटाई का बीड़ा उठाए  
तो बहुत से छंट कर  
बाहर आ जाएँ।

पर बाहर  
बेरोजगारी बढ़ाना मना है  
इसलिए भीतर  
बेरोजगारों को मिली  
पनाह है।

### तीन लघु कविताएँ

(1)  
श्रापों के उलट गये अर्थ  
भूखी पीढ़ी बोन लगी  
लाल हरे रंगों के  
सार्थक प्रसंग / निरासंग।

(2)  
कानों के पास  
यह कैसा धमाका था  
स्मृतियों के काफिले  
तो आ गये थे  
निःशब्द॥

(3)  
मन में जन्मा

कोई दुःख स्वप्न  
न जन्मी कोई कविता  
कारावास का एक दिन  
और घट गया ॥

## गजल

कहाँ छुपाई कहाँ रखी, सही समझ किस आले में  
चीख पुकार मची है क्यों, मन उलझा किस जाले में।

कई मखमली अनुभव भी, पाकर ना संतुष्ट हुए  
अधिक शीत में ठिठुर-ठिठुर, जमी सांस नम पाले में।

अधिक तिमिर में थी रक्षित, उसकी सारी पूँजी कल  
चोर-चोर का शोर मचा, दिन के आज उजाले में

रहा बाँटता आँसू वो, बीच सड़क पर खड़ा हुआ  
कैसे मुस्काए कोई, ऐसे कष्ट कसाले में।

बहुत हुआ रोना धोना, बहुत हुई आपाधापी  
उसकी जीवन-गाथा अब, पढ़ना किसी रगाले में।

## राजी सेठ

### प्रवासी बेटे की वर्षगाँठ पर

लिखना तो तुम्हें था  
तुम्हारी वर्षगाँठ ऐसे बीते जैसे  
उत्सव की रात्रि  
जैसे लदा हुआ गुलमोहर  
जैसे रहट के उढ़ेलने पर  
धरती का हमसफर हो जाता छलछलाता जल  
जैसे भोर के पक्षियों की वायुगामिता  
जैसे चन्द्र के स्पर्श से सिहरी जल की सतह  
जैसे किसी भूले की  
अचानक याद

लिखना तो तुम्हें था  
और भी कितना कुछ  
पर मन के घायल होने का मर्म  
तुम तो नहीं जानोगे मेरे बच्चे  
तपती रेत पर नंगे पांव चल रहा है  
मेरा देश  
तेरा भी देश, पर  
तू सुखी तो है, कि  
अखबार की तरह बाँचता है अपना देश  
तू रचता है अपना काल  
जहाँ, जो जो

जैसा तू चाहना चाहता है  
उठाकर धर लेता है अपने पास  
सो भी जाता है निर्भ्रात

पर मैं?  
मन किस कुटिल क्रूर मुट्ठी में  
इतना मिचा कि  
आशीषने को  
श्वास की लय भी खींच कर नहीं आती  
एक माँ की!!

### लोथों के जंगल लांघ कर

बच्चे मारे गए मैदानों में  
गोलियों की बौछार से चाक हुई छतियाँ  
घुट गए टेंटुए  
रक्त सी जी धरा

मैदान विस्फारित था  
अब  
किस रास्ते से आ पाएगा भविष्य  
लोथों के जंगल लाँघकर

### आतंक

दीखते नहीं हाथ, जिन्होंने  
कुल्हाड़ी को थामा है  
दीखती है हवा में तनी  
चकमक काप  
कुल्हाड़ी की

दीखतीं हैं बस गरदनें  
बिना तैयारी की  
निरपराध  
कौन सा क्षण  
कब कहाँ गिरेगी  
काप कुल्हाड़ी की

### देश के स्तर पर

मक्खन की बाँट चल रही  
ऊपर कहीं  
छाछ के आलोड़न में  
लड़ रही मथनियाँ  
भीतर कहीं  
छन रही खटास  
रेशों में जिस तरह  
जड़ों को रीता कर देने का खतरा  
झेलेगा मेरा देश  
किस तरह।

## सुषम बेदी

### मेरी दो जिंदगियाँ समानांतर : एक प्रवासी मनःस्थिति

मेरी दो जिंदगियाँ समानांतर  
एक अँधेरे को खोजती  
दूसरी अँधेरे से लिपटी  
एक रौशनी से चुँधियाई  
एक तुम तक पहुँचने को आकुल  
दूसरी तुम्हीं से बचती-कतराती।

किसी संज्ञा में दोनों के मिल आने का इन्तजार करती  
और चिढ़ती इंतजार के नाम से  
उलझती-गुलझती वर्तमान से  
सहेजती बिछड़े अतीत को  
रह जाती अटकी किसी अर्द्धविराम में

क्या मेरी चाही है यह समानांतरता,  
यह बँटवारा,  
यह दो नावों की सवारी  
क्या ये चाहना है?  
या कि एक सफर की उबाहट ही  
क्षर होते-होते गर्भ का बीज बन जाती है  
और जन्म देती है इस समानांतरता को।  
इस दोहरेपन को।

लेकिन उबाहट तो बाँझ है।  
इस बाँझ से पैदा होनेवाला  
गांधारी के पेट से निकले गोले की तरह  
सिर्फ सैकड़ों दुर्योधन को ही जन्म देगा।  
क्यों हो चाह मुझे दुर्योधनों की?

परन्तु...  
युधिष्ठिरों की कामना भी मुझे क्यों हो  
अर्ध सत्य तो मैं खुद हूँ  
रौशनी-नारौशनी, अँधेरे-अनअँधेरे,  
चुप या बोलती खामोशी के  
युद्धनाद से  
बधिराती  
झूठे विश्वासों और सच्चे भुलावों में हिंडोलती  
जीने, न जीने के रिश्तों में लोटती

यूँ अपने अच्छे-बुरे की पहचान मैंने भली सीखी है  
हीरे की परख न कर पाऊँ  
कोयले की परख जरूर जानी है  
मोती न टटोल पाऊँ  
रेत की पहचान मुझे खूब आती है।

मेरे लिये तो कृष्ण भी पिटा हुआ नारा भर है  
उसे चाहे चमकती-दमकती पोशाक पहना क्वीन्स के मंदिर में बैठा दूँ।  
या अपने अपार्टमेंट के पूजा-शेल्फ में।  
महाभारत के अर्जुन में ऊर्जा भर देने वाला कृष्ण मुझे रास नहीं आता।  
महाभारत कहानी है दो दुश्मन भाइयों की  
जिनका चालाक दोस्त कृष्ण कहीं मार नहीं खाता  
और किसी पूंजीवादी शक्ति की तरह  
बहका देता है उन भाइयों को आपस में लड़-भिड़ मर जाने को।

भरे पेट देखता है तमाशा  
मारामारी का / बलात्कार का  
और उगलता है गीता  
सेल्युलायड के परदे पर  
बेतार तार पर।

संस्कृति मेरे तन-मन का सिंहासन छोड़  
आ बैठी है किसी फैशन डिजाइनर के बुतीक में  
किसी मुगलई रेस्तरां के मेन्यू में  
पीतल की बेढब मूर्तियों में  
या ताज की नकल का दंभ भरती किसी जुआखाने की  
बेढंगी और सस्ती सजावट में

हर कोई टुच्चा-पुच्चा, टटपुंजिया बन जाता है  
यहाँ भारतीयता का प्रतिनिधि  
भारतीय जैसे कोई अनाथ बालक हो किसी धाय की खोज में  
या कोई बदनाम औरत हो एक नाम की खोज में।

बंटा है कि बसा है यह अदृश्य, रहस्यमय मन  
इन दो जिंदगियों में!  
पर रहता है कहीं और  
किसी अंतहीन अंतरिक्ष में?  
या कि किसी / अबूझ बंद गली में।

कुछ भी हो मुझे जीना है  
पनाह लेनी है किसी महफूज मरकज में  
ये दो जिंदगियों का इकलौता सच है  
सच है कि झूठ है  
पर जो भी हो  
है।

## आसमान मैनहैटन की गली में

आसमान एक तंग गली है  
ठीक मेरी गली के ऊपर।  
उस पर न तो स्पुतनिक उड़ते हैं  
न रंग-बिरंगी चिड़ियाँ  
गंधमयी बयार भी नहीं छूती उसे  
न बादलों को घेरती सुनहरी रेखाएँ।

हाँ मेरी हथेली पर कभी-कभी उतर आते हैं  
धूप के कुछ कतरे  
जिन्हें सूरज मान मैं  
चूम लेती हूँ  
प्रणाम कर माथे पर धर लेती हूँ  
और छुवा देती हूँ  
उस नन्हें बोनसाई को  
जो कुछ दिन पहले ही परिवार का  
सदस्य बनने चला आया था  
और अब धमकी देने लगा है  
कूच कर जाने की।

मैं डर जाती हूँ उसकी धमकी से।  
और आँखों से चूमने लगती हूँ  
गली पर के आसमान की नीलाई को  
आसमान के टुकड़े को बिस्कुट की तरह चबाने लगती हूँ।  
कहीं अपनी जगह से वो गायब न हो जाय  
मैं पूरा का पूरा निगल जाती हूँ  
और हाजमे की गोली खा  
दफ्तर के केबिन में बंद हो जाती हूँ

## कविता

मत छुओ मुझे  
कि छूने से

हर बड़ी अहम चीज हो जाती है  
कि बड़प्पन का सारा खोल चटक कर टूट गिरता है  
और बह जाते हैं गर्हणा के नाले में वे टुकड़े  
घर से बुहारे गये मैल-चीकट की तरह।

यह वह छूना नहीं जो पत्थर को अहल्या का रूप दे दे  
या कदंब को पुष्पावृत कर दे  
या किसी कुमारी को लज्जा से लाल कर दे  
यह वो छूना है  
जो अनावृत करता है  
अंतस को चीर-फाड़ कर धर देता है  
करीब जाता है  
करीब लाता है

पर शायद तुम्हें लगने लगे  
कि तुम्हारा बड़प्पन  
तुम्हारा शानदार महिमामय स्वरूप  
कुछ था ही नहीं  
या उसके इलावा भी तुम बहुत कुछ हो जो सिर्फ बड़प्पन से  
परिभाषित नहीं होता  
या वह मात्र एक खोल था, एक मुखौटा या कोई कवच!  
क्यों न मुझसे दूर रहो  
छेड़ो न मुझे।

मैं

जोकि खुद एक नामहीन, आमतार हस्ती हूँ  
सब का यही हम्न मुझे श्रेय है मेरा प्रिय है  
क्योंकि सच ही मेरा श्रेय और प्रेय है  
और सच मेरे बहुत-बहुत करीब ही बसता है  
उसे किसी ऊँचाई से खींच कर लाना नहीं होता

किसी ऊँचाई तक पहुँचाना नहीं होता  
वह तो हर कहीं रहता है  
हर पड़ाव पर, हर थल पर।  
कि छूने से वह महक भी सकता है  
कि छूने से वह बहक भी सकता है  
कि छूने से वह छोटा होता है तो छूने से ही बड़ा भी।

अगर सच से तुम्हें डर न लगता हो  
तो मेरा छूना  
तुम्हें मुक्ति देगा।

## नीरा परमार

### लेखिका

स्त्री

रोजमर्रे के संसार के समकक्ष  
रचना चाहती है एक सृष्टि

सुबह-शाम के दबावों के बीच  
कुछ देर के लिए  
मिलती है उसे छोटी-सी दोपहरी की मोहलत  
जहाँ वह  
पत्नी-माँ-विविध सम्बन्धों को स्थगित कर  
अपने से रूबरू होते  
बन जाती है  
एक औरत

शब्द-दर-शब्द  
कहती  
सुनती  
सृजनरत  
कभी हवा और धूप में थिरकती  
सुबुक फुनगी की मानिन्द  
प्रसन्न  
पंक्तियाँ रचती  
तो कभी

गिरस्ती की गठरी  
शब्दों की छाँह में रख  
सुस्ताती है।

### रस्सी कूदती लड़की

तितली के पंखों से भी हल्की प्रसन्न  
रस्सी कूदती लड़की  
गति की लहरों पर थिरकती है

हवा में  
लहराती  
लयबद्ध चोटियाँ  
तार पर अटकी  
फरफराती रंगीन पतंग सी  
फ्राक

नहीं काया  
वर्षा की बूँदों की  
उछल कूद

विषुवत्-रेखा पर  
नाचती पृथ्वी का यह बिम्ब  
धूप-सा

हौले  
छू जाता है  
जीवन से नम  
अंकुर को।



## निजी कक्ष

बरसों  
गृहिणी ने  
आना-जाना किया है  
रसोई भंडार-घर  
ड्राइंगरूम बेडरूम  
और  
गृहस्वामिनी की  
सनद पाई है  
बरसों  
रिश्तों की माँगों  
और घड़ी की सुइयों की आपा-धापी ने  
उसे इन कमरों में  
निजी कमरा  
बाँधने की सुधि ही नहीं दिलवाई।

कमरा!  
एक नितान्त अपना कमरा!!

नैहर की सगी छॉह-सी झुकी छत  
गले मिलती  
बचपन की सहेली-सी दीवारें  
सरगोशियाँ करता कोना-कोना  
डायरी के अन्तरंग पृष्ठों-से  
खुलते-बन्द होते  
खिड़की-दरवाजे  
जहाँ का एकान्त  
अन्नपूर्णा गृहलक्ष्मी के सारे  
अतिपरिचित अभिधान उतार

उससे  
संसार के  
असंख्य इन्सानों-सी धड़कती  
नब्ज  
उसकी मानवी से मिलवाता।

## अन्तराल

कड़कड़ाती ठंड  
बरसते मेघ  
तपते घाम में  
रिक्शा ठेला खींचता  
भार ढोता  
थका-थकाया शरीर  
ठेले वाले  
रामसकल भाई के हाथों से  
चाय का गिलास ही नहीं थामता  
खुरदरी उँगलियों में  
राहत के कुछ पल  
थाम लेता है।  
लाल-लाल चाय से  
गर्म-गर्म  
भाप ही नहीं उठती  
जैसे  
सूने-नंगे पहाड़ों-सी  
जिन्दगी में  
कुछ देर के लिए  
सुनहरा  
उष्ण सोता फूट पड़ता है।

## उपस्थिति

आज  
दिन भर  
गर्दस  
पसीने से भीगे  
जूते गाँठते हाथ द्वारा  
लौटाया गया  
सिक्का  
पर्स से रुपए निकालते वक्त  
बार-बार  
अपने पूरे वजूद के साथ  
हाथ से टकराता रहा!

## पुनरावर्तन

कहीं कोई पत्ता भी नहीं खड़केगा  
हर बार की तरह  
ऐसे ही  
सुलगते पलाश  
रक्त की चादर ओढ़े  
चीलों और गिद्धों को  
खींच ले आएँगे।

घेर कर मारे जानेवाले  
प्रेमरत जोड़ों को  
कुचलने के लिए उठा हुआ पत्थर,  
अपने सम्पूर्ण खौफ  
पूरे वजूद के साथ  
पत्थर-युग की हिश्र

कबिलाई जुनून लिए  
इसी बीसवीं सदी के जंगल में दहाड़ता है  
खामोश!  
ऐसे ही  
कुचल दिए जाते रहोगे  
ऐसे ही  
जलती लकड़ियों से  
प्रेम को नंगा कर  
दोजखी आग से  
झुलसा दिया जाता रहेगा!

किसकी  
आखिर किसकी इजाजत से  
तुमने अपने माथे पर  
प्रेम का कलंक लगाया!  
हृद है नाफरमानी की!  
तुम्हें हमने अखाड़े दिए  
खूनी संघर्षों की गलाकाट होड़ के,  
तुम  
इस  
धर्म जाति नस्ल नीति नाम के  
बाड़ों  
रेवड़ से अलग हो  
इन्सानी बोली बोलने लगे  
सुनो नसीहत लो  
कहीं कुछ भी नहीं बदला  
इस होते रहने के बदले  
कहीं खरोँच भी नहीं आएगी  
तुम्हारे विरुद्ध/उठा हुआ पत्थर  
गवाह रहेगा

एक दिन  
समय के बनैले तीखे दाँत  
सारी घटनाओं  
तथ्यों सबूतों गवाहियों  
आक्रोशों-प्रतिरोधों को  
चट कर जाएँगे  
दूर-दूर तक  
हवा में कहीं कोई  
गंध  
कोई सुगबुगाहट तक नहीं होगी!

---

**नोट :** हजारीबाग जिले के हेंदेंगढ़ में घटित 'महावीर राम,-मालती महतो प्रकरण' से सम्बन्धित/महावीर राम, हरिजन युवक ने मालती महतो से जब प्रेम-विवाह कर लिया तो बिरादरीवालों ने महावीर राम को पत्थरों से कुचलकर मार दिया तथा मालती महतो के नंगे बदन पर जलती लकड़ियों से प्रहार कर उसे प्रताड़ित किया। इसी के सन्दर्भ में है यह कविता।

## डॉ. सुशीला टाकभौरे

### अनुत्तरित प्रश्न

अनुगुंजित होती है आवाज  
यदि किसी गहरे कुँए से  
अँधेरी गुफा से कुछ कहा जाये  
प्रति-उत्तर में ध्वनि गूँजती है

मगर तुम  
कभी जबाव नहीं देते  
मुझे नगण्य मानते हो  
या चाहते हो  
परम्परा चलती रहे  
उत्तर की हताशा में  
मेरे तुम्हारे बीच के प्रश्न  
खोते चले जाएँ।

तुम्हारा मौन, चिन्तन  
स्वामित्वपूर्ण बड़प्पन का भाव  
एक आड़ है  
मुझे कचोटने लगे हैं  
अपने विचार  
यह जानकर कि  
मैं उपेक्षित हूँ।

मेरे भीतर के आकाश में  
बवंडर गूँजता है  
आँतों की ऐंठन  
कलेजे को कचोटती है  
सुनने की अकुलाहट में  
श्रवण शक्ति सुनती है  
स्वयं के प्रश्न  
हर बार  
यही इतिहास दोहराया जाता है।

तुम नहीं जानते  
वे सब अनुत्तरित प्रश्न उतनी ही पीड़ा देते हैं  
जितना कि  
कोई आराधित भाव  
जो अधपुजा ही रह जाये  
और असंतुष्ट भाव से  
एक अभिशाप बन जाये

अगर बन जाऊँ मैं  
सनातन परम्परा को  
तोड़ने हेतु  
तुम्हारे लिए अभिशाप  
गहरे कुँ तक पहुँचा दूँ  
तुम्हारे चिन्तन के  
आधार ग्रन्थ  
टूटेगा मौन व्रत  
भविष्य की अंधेरी गुफा में  
तब  
मानव श्रोता  
मेरे प्रश्नों के उत्तर

तुम जरूर दोगे  
केवल इतना ही नहीं  
उन्हें बार-बार दोहराते रहोगे।

### आस की पीड़ा

परिन्दों की तरह  
पंख फड़फड़ाते हैं  
स्वप्न  
एक बेटा और एक बेटा  
हर बार आस अधूरी ही रहती है  
जैसे अब रहते हैं  
दिवा स्वप्नों के अधभरे पेट।

जीवन की दौड़ में  
कदम से कदम मिलाकर  
चलते हैं पैर  
हर बोझ को उठाने में  
सक्षम हैं हाथ  
सिर के साथ सब ठीक है  
आँख कान गला  
अगर नहीं है कुछ  
तो  
गले के नीचे और

पैरों के ऊपर का हिस्सा  
वहाँ केवल स्वप्न हैं  
एक बेटा और एक बेटा।

बेटियों की शादी

आखिरी विदाई है  
क्यों सबकी आँख भर आई है  
जब जन्म की जमीन ही  
नदारद है  
हवा पानी  
क्या रोये, क्या गाये?

थिरकती झील में  
स्वप्न उतरे हैं  
चाँद और सूरज बनकर  
सारा बखेड़ा तो  
पेड़ों की परछाई का है  
उदयाचल की ओर  
दिन की लाश उठाने के लिए चाहिए  
चार कहार  
पाँचवाँ ले जायेगा  
अग्नि

नहीं लौटाएँगे ये / अगला दिन  
अगला जन्म  
मोक्ष के नाम पर  
सब खो जायेगा  
बेटी झील सी आँखों से  
राह तकती रहेगी?

फिर भी  
परिन्दों की तरह  
पंख फड़फड़ाएँगे  
स्वप्न  
एक बेटा और चार बेटे

## जल प्लावन करना है

नारी  
तुम एक शक्ति हो  
केवल समिधा नहीं  
स्वयं पूर्ण महायज्ञ हो।

केवल शरीर नहीं  
जिसका धर्म गलना, सड़ना  
या मात्र किसी की भूख मिटाना!

तुम्हारा ओज अग्नितत्व  
तुम्हारी सीमा धरती से आकाश  
मुक्त पवन में ऊँची उड़ान भरना

आधी नहीं स्वयं पूर्ण  
समर्पण के समानान्तर  
तुम्हें प्राप्य पाना  
ओ सरिता! सागर को पाना  
जीवन का ध्येय नहीं  
जीवन है सागर बन जाना।  
फिर शेष संस्कृति में  
तुम भी मानव कहलाओगी।

## गाली

वफा के नाम पर  
अपने आपको  
एक कुत्ता  
कहा जा सकता है

मगर  
कुतिया नहीं।

कुतिया शब्द सुनकर ही लगता है  
यह एक गाली है  
क्या इसलिए  
कि वह  
स्त्री वर्ग में आती है?  
उसके चरित्र को  
उसकी वफा को  
अनेक बाँटों में तौला जाता है!

जब कुत्ता और कुतिया  
एक दूसरे के पूरक हैं  
तब  
कुत्ते को वफादार  
कहने के साथ ही  
चरित्र के नाम पर  
'कुतिया' गाली क्यों दी जाती है?

पुरुष-प्रधान समाज में  
चाहे समर्पण हो  
या विद्रोह  
दुर्गुण का दोष नारी पर है  
पुरुष के दुर्गुणों पर हमेशा  
मनु-नाम की  
चादर डाली जाती है!

स्त्री

एक स्त्री  
जब भी कोई कोशिश करती है  
लिखने की, बोलने की, समझने की  
सदा भयभीत-सी रहती है  
मानो  
पहरेदारी करता हुआ  
कोई  
सिर पर सवार हो  
पहरेदार  
जैसे एक मजदूर औरत के लिए  
ठेकेदार  
या खरीदी सम्पत्ति के लिए  
चौकीदार।

वह सोचती है  
लिखते समय कलम को झुका ले  
बोलते समय बात को सँभाल ले  
और समझने के लिए  
सबके दृष्टिकोण से देखे  
क्योंकि वह एक स्त्री है!

लेकिन कब तक?  
मन की चट्टान पर  
जब भी चोट पड़ती है  
सब ओर  
एक आग सी फैल जाती है  
धुँधआती अधजली आग  
ज्वालामुखी फूट पड़ती है।

लोग  
भूकम्प की बात को  
सहज मानते हैं  
स्त्री  
ज्वालामुखी हो सकती है  
यह भी तो  
सहज बात है।

## डॉ. अन्नपूर्णा श्रीवास्तव

### प्रवाह

बदल गया है सभी कुछ  
आस-पास की हवा का रुख भी

हर तरफ जहर ही जहर

मुरझाये दीखते हैं मुझे  
हर बगीचे के फूल

अँधेरा घिरता है  
डर है कहीं इस अँधेरे की तरह  
सब कुछ अँधेरा न हो जाय  
या फिर कुछ छिछली नदी हो जाय  
सूख जाय  
प्रवाह एक हो न जाय  
लेकिन सागर तो रहेगा ही  
और जब सागर रहेगा  
तब नदी भी छिछली नहीं होगी  
बारिश का होना और सूरज का उगना  
तय शुदा है।

## गाँव शहर में

दौड़ पड़ते हैं लोग  
गाँव से शहर की ओर  
खुले मैदान छोड़ कर  
दो कमरों में खत्म हो जाने के लिए  
माटी की गंध प्यारी नहीं है अब।  
शहर की जहरीली हवा  
अब ज्यादा रास आती है  
पुआल छोड़कर  
लोग शहर को लिहाफ की तरह ओढ़  
लेते हैं  
खपरैल बुलाते हैं बचपनों को  
मगर बचपन तो खँसते बुढ़ापे में  
तब्दील होते जा रहे हैं।  
गाँव और शहर के बीच का पुल  
बहता जा रहा है  
एक बूढ़ा पेड़  
इसकी शिनाख्त करता है।

## कविता

तपती धूप कड़ाकी ठण्डक  
और  
रिम-झिम बारिश में भी  
नहीं रुकता है तेरा घर आना  
नहीं रुक पाता है मेरा कदम  
जाने क्यों?  
बहुत सन्निकट और चिरपरिचित सा  
लगता है

तुम्हारे बागों के लहलहाते फूल  
नन्हें-नन्हें पौधा  
जो कभी वृक्ष का स्वरूप हो तो  
और उसकी कोमल पत्तियाँ  
हवा में झूलते नवजात फूल  
ऐ सभी मेरे अपने  
और बहुत करीब सा लगते हैं।  
सांझ की गोधूलि में  
छत पर घण्टों बैठकर  
भावनात्मक विचारों की  
जो शब्द प्रस्फुटित होते हैं।  
वे स्वयं कविता  
बन जाते हैं।  
कविता बन जाते हैं।



## कात्यायनी

### न कोई संस्मरण

कोई संस्मरण  
लिखूँगी भी  
तो  
उन्हीं समकालीनों पर  
नहीं लिखेंगे  
जो  
कभी हम पर  
न सुनाएँगे कोई संस्मरण  
चुप रहेंगे।

अहमियत रखता है  
जीना  
आर्थर डंकल, कैमेडेसस और क्लिण्टन और  
येल्सिन के  
समय में  
पर व्यक्ति नहीं  
वे कुछ प्रतीक हैं हमारे लिए  
या शायद  
दूरस्थ धूमकेतु  
गढ़ते हुए हमारी नियति।

वर्जित होगा

हमारी स्मृतियों में  
उनका प्रवेश  
जहाँ उन्हें होना होगा  
या होना होगा नरसिंह राव या आडवानी को  
वहाँ होगी  
एक  
अंधेरी  
काली  
खोह

कलावन्तों कवियों पर लिखने की सोचें  
फिर?  
सभी लिखेंगे  
त्रिलोचन पर  
केदारनाथ सिंह  
से  
अशोक वाजपेयी तक  
केदारनाथ अग्रवाल  
पर  
रामविलास शर्मा  
नामवर पर लिखेंगे  
बहुतेरे  
जैसे कि  
परमानन्द श्रीवास्तव  
उसी अधिकार के साथ  
जैसे लिखा था कभी  
विजयदेव नारायण साही पर

सभी युवा कवियों पर  
लिखेंगे

सभी युवा कवि  
सभी युवा लेखकों  
पर  
सभी युवा लेखक  
वृद्धावस्था  
में  
प्रवेश  
करते  
हुए बची हुई रोशनाई खत्म करते हुए

क्या करूँगी?  
कैसे लिख सकूँगी एक संस्मरण सलोना?  
जो कभी नहीं लिखेंगे सुनाएँगे  
उन युद्धरत साथियों को  
संस्मरणों में लाना  
उन्हें एक जीवित विश्व से  
बाहर खींच लाना होगा  
असम्भव होगा उन्हें  
अपने लोगों से विलग करना

पेड़ों और फूलों और फसलों की  
विलुप्त होती प्रजातियों पर भी  
लिखा जा सकता है।  
बशर्ते कि  
यह मान लिया जाये कि  
उन्हें  
विलुप्त होना ही है

सो  
तय

यही  
रहा  
मैं नहीं लिखूँगी अपने समकालीनों पर  
कोई संस्मरण

फुरसत भी  
भला  
कब  
होगी?  
तैरते रहेंगे यदि लगातार धारा के विरुद्ध  
यदि  
रह सकेंगे सतत् प्रयोगरत  
कब ले सकेंगे अवकाश  
लिखने को  
एक संस्मरण?

### यूँ अचानक एक दिन हमारा

बिना किसी पूर्वाभास के  
यूँ अचानक हम  
प्रविष्ट हो जाते हैं  
प्रेम की दुनियाँ में  
एक चमत्कार की तरह घटित हो जाते हैं  
बरस 1992 के चौथे महीने की  
किसी एक तारीख को

हफ्तों की व्यस्तता  
कामों और बहसों और मतभेद और एकता  
और शोर और शान्ति की थकान के बाद  
ईर्ष्यालु मित्रों की कल्पनाओं पर

मन्दी की तरह छाते हुए  
गुप्त दुश्मनों की योजनाओं को  
1987 के 'ग्रेट कैश' की तरह  
तबाह करते हुए  
हम आते हैं एक बड़ी दुनिया में जैसे कई  
पराजयों के बाद पुनः  
युद्ध के एक नये दौर में

जनउभार की तरह उठते हैं हम  
शिथिलता से ऊपर  
बगावत की तरह चमकते हैं  
यथास्थिति के सिर पर  
हम बातें करते हैं  
जैसे अपने लोगों के बीच रहने वाले लोग  
करते हैं दुःख-तकलीफ से भरे दिनों में  
जैसे जेल में गाये जाते हैं गीत  
यूँ हम चुप रहते हैं  
अंधेरी कालकोठरी में गड़बड़ा जाये जैसे  
तारीखों का गिनना  
हम गर्मियों को समझते हैं वसन्त

यूँ होता है अचानक  
हाथ में सब्जी का झोला लिए  
दरवाजे से कई दिनों का अखबार उठाते  
हफ्तों से डाली गई चिट्ठियाँ बटोरते  
ताजा खोलते धूल झाड़ते  
प्रेम की दुनिया में अचानक प्रविष्ट होना  
जैसे अप्रत्याशित  
समय से पहले रिहा कर दिया जाना  
कौंध की तरह

एक पूरी की पूरी कविता सूझ जाना  
जैसे फिर उम्मीदों से भर जाना  
जैसे ट्रेन छूट जाने पर  
स्टेशन से किसी अपने का लौट आना  
जैसे सहसा इस बात का दिमाग में  
आ जाना कि  
इतने बुरे भी नहीं हैं हालात कि सिर्फ  
किया जाये चिन्तन और चिन्ता भर ही  
यूँ होता है अचानक  
एक दिन हमारा...

### बनी नहीं कविता?

एक  
नगर महापालिका को पत्र लिखा मैंने  
यदि वह नहीं देगी पानी  
नहीं करायेगी सड़कों और नालियों की  
सफाई  
हम नहीं देंगे उसे जल-कर और गृह-कर  
मैंने विकास प्राधिकरण से पूछा  
वायदा खिलाफी करने के बाद  
वह हमें कैसे बेदखल कर सकती है  
मकान से  
जब तमाम मेहनत के बावजूद  
अदा नहीं कर सके हम कीमत की  
मासिक किस्त?

खाना नहीं पकाया  
उस दिन मैंने

दहेज-हत्या को सामाजिक ढांचे का  
लक्षण बताया  
अभिव्यक्ति की आजादी का सवाल उठाया  
और विधि के शासन में अविश्वास जताया  
उस दिन मैंने  
पूरी ईमानदारी से  
दो टूक शब्दों में  
बयान कर दीं वे सारी बातें जो दिल में थीं

उस दिन  
पूरे शहर में रेड एलर्ट घोषित  
कर दिया गया  
रिवेरो और गिल और प्रकाश सिंह को  
भेज दिया गया  
हालात पर काबू पाने के लिए  
उस दिन  
सायरन के शोर से  
सारा शहर भर गया  
विज्ञ आलोचक गण ने उचकाये कंधे  
बिचकाये मुँह,  
'यह भी हुई क्या कोई कविता'

### एक झरना, कुछ नौजवान और एक गुमनाम कब्र

गुमनाम एक कब्र  
पहाड़ी पर  
उसपर लगा क्रॉस  
दूर से दिखता हुआ  
वहाँ नीचे एक झरना गिरता था  
सैलानियों की पहुँच से दूर

बरसों-बरस बाद  
पहुँचे वहाँ  
उस दिन  
कुछ नौजवान  
हँसते-गाते  
खूब नहाये उस दिन वे  
गाते रहे देर तक  
वे सभी गीत  
जो उन्हें याद थे  
उस दिन  
वे बेफिक्र थे  
जैसे कि  
सब जगह  
सबकुछ  
ठीक-ठाक हो गया था उस दिन  
यूँ  
उन्होंने बिताया  
अपनी जिन्दगी का  
एक दिन  
उस झरने के साथ।  
यूँ  
उन्होंने  
खुश रहने की चेष्टा की  
उस दिन  
लौटते शाम ढले  
खोज न पाये  
सही पगडण्डी  
भूल गये राह  
अँधेरा बढ़ा चाँद उठा  
चमकते हुए उस क्रॉस ने

चाँदनी रात में  
बताई उन्हें दिशा  
यूँ  
वह क्रॉस बना  
दिशा संकेतक उस दिन  
गुमनाम उस कब्र को  
नई पहचान मिली  
राह खोजते  
नौजवानों को  
देकर दिशा

खिली वह  
उनके चेहरों पर  
चाँदनी बनकर।

### गोयबेल्स 1994

असत्य के टावर की  
ऊपरी मंजिल पर खड़ा  
गोयबेल्स हँसता है  
बरसता है  
खून सना अन्धकार  
गोयबेल्स हँसता है  
उसके कलमनवीसों की कलमें  
कागज पर सरसराती हैं  
धरती पर घिसटती  
कैदी के हाथ-पाँव में

नोट : 17 मई 1994 को लखनऊ में एक अखबार की पीत पत्रकारिता के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे संस्कृतिकर्मियों पर गुंडों के कातिलाना हमले, उनसे मिली हुई पुलिस द्वारा गिरफ्तारी और फिर देशव्यापी विरोध के कारण रिहाई के बाद लिखी गई कविता।

बँधी जंजीरों की तरह  
गोयबेल्स हँसता है  
और चारों ओर से  
हिस्त्र पशुओं की आवाजें  
गूँजने लगती हैं  
नात्सी बूटों की धमक की तरह  
गूँजती है  
गोयबेल्स की हँसी

गोयबेल्स हँसता है  
तो खतरे के सायरन  
बज उठते हैं  
उसकी हँसी रूकने तक  
फायर ब्रिगेड की गाड़ियाँ  
सड़कों पर बिखरे  
खून के धब्बों को  
धोना शुरू कर चुकी होती हैं

गोयबेल्स हँसता है  
और हवा में हरे-हरे नोट  
उड़ने लगते हैं  
सत्ता के गलियारों में  
जाकर गिरने लगते हैं  
खाकी वर्दीधारी घायल स्त्री पुरुषों को  
घसीटकर गाड़ियों में  
भरने लगते हैं

गोयबेल्स हँसता है  
और टॉवर के तहखाने में  
छापाखाने की मशीनें

चल पड़ती हैं  
गोयबेल्स हँसता है  
तब तक  
जब तक प्रतिवाद नहीं होता  
निर्भीक ढंग से  
खड़े रहकर  
सिर्फ खड़े रहकर  
रोकी जा सकती है  
यह मनहूस काली हँसी  
और जब लोग  
आगे बढ़ते हैं  
यह हँसी एक सन्नाटे में  
गुम हो जाती है।

### उनका भय

वन्य पशु  
डरते हैं आग से  
वे  
हमारी निर्भीक आँखों से  
जो झाँकती हैं  
सीधे  
उनकी आँखों में।

### रुकावट के लिए खेद!

कृपया थोड़ी देर के लिए  
यह शोरगुल बन्द कीजिए  
यह कारुणिक रूदन हमारी नियति पर  
यह संवेदना प्रकटीकरण

यह सहानुभूति-प्रदर्शन  
कुछ देर को हमें छूट दे दीजिए  
अपनी इन कविताओं में  
अनुपस्थित रहने की  
हमारी असहनीय स्थिति पर तैयार  
भारी भरकम रिपोर्टों का  
यह असहनीय बोझ  
थोड़ी देर के लिए उतार लीजिए  
हमारी पीठ से

ये मीटिंग सेमिनार सिम्पोजियम वर्कशाप सर्वे  
ये बहसों कुछ देर को स्थगित कर दीजिए  
नारी मुक्ति के शोषक भद्रजनो  
सम्भ्रान्त विद्वान प्रगतिशील मित्रो-साथियो  
हमें जरा सोचने दीजिए  
संजीदगी के साथ अपने कठिन हालात  
और उन्हें बदलने के जटिल रास्तों पर  
जटिल को और अधिक जटिल मत बनाइये  
शोर बन्द कीजिए  
सुनने दीजिए हमें कान लगाकर  
आगत के पदचापों को  
धमाचौकड़ी बन्द कीजिए  
धूल गर्द छटे तो हम भी देखें जरा  
अपने आस-पास की दुनिया  
और पहचानें आगामी दिनों की  
दुर्गम यात्राओं में  
साथ चलने वालों के चेहरे।

## मधु शर्मा

### प्रतीक्षा

पहाड़/और समुद्र  
के बीच  
अनन्त काल सघन

बर्फ हो होकर  
पिघलती आत्मा  
जिस्मों में कैद  
गल-गल कर सर्द होती चेतना

आग/यहीं कहीं है  
प्रतीक्षा में  
दिप्-दिप्

### परिंदे

परिंदे  
पंख फड़फड़ाकर  
उड़ गये

रह गया / टूँठ खाली पेड़  
यहीं कहीं  
शायद मैं

## आइने में सीढ़ियाँ

(शमशेर के चित्रों, परदों के पीछे से प्रेरित)

परदों के पीछे  
एक क्रॉस है  
एक घन को काटता  
और एक औरत  
खिड़की के जाल में कैद  
आइना लिए  
जिसमें  
उसकी सूरत कहीं नहीं  
सिर्फ सीढ़ियाँ हैं  
और एक व्यर्थ-सी  
उतार-चढ़ाव की थकान

जिन्दगी  
बस यूँ ही-सी।

## शकुन्तला के परिलोक में

(शमशेर की एक पेंटिंग (इसी शीर्षक की) देखकर)

उफनती नदी के पास  
...एक औरत  
हाथ में वायलिन/या कुछ ऐसा ही...  
नंगे पाँव  
घिरी छायाओं से अजूबा  
और अंधकार  
बहुत सा ऊपर मंडराता  
और कुछ रंग  
अंधकार

होने से बचे हुए

औरत  
उजाले में है हालांकि अब भी  
स्याह होती हुई।

### औरत एक

(आग और पानी का खेल)

चौके के पास  
झूठे बर्तनों से घिरी  
सीली सुलगती औरत...  
जिसका सीना चाक-चाक हो गया है

चौड़ा चकला दर्द लिए  
पैरों के निशान  
बार-बार पोंछती है वह  
चिकना चमकाती है फर्श

उसी में  
ठीक करती है फिर  
माथे की टिकुली

और क्यों  
आग और पानी का खेल खेलती  
बर्फ हुई औरत  
अपना सफर तय करती है।  
दूसरों के लिए।

### औरत दो

बीहड़  
रेगिस्तानों से गुजरती  
नदी का गीत गाती है औरत

तपती सिल पर बैठी  
आँखों में लिए  
अनन्त मेघ

कहीं दूर...  
झरने की आवाजों में  
नहाती है औरत।



## डॉ. रेखा व्यास

### वर्तमान

वर्तमान ।  
बड़े विचित्र हो तुम  
अब तुम साथ होते हो  
तब कुण्ठा, तनाव व खीज उपजाते हो  
उन सम्बन्धियों की तरह  
जो पास होने पर बड़े ही अप्रिय  
परन्तु दूरस्थ होकर  
अच्छे अर्थों में सम्बन्धी बन जाते हैं  
हाँ, जब तुम भविष्य होते हो  
तब बड़े ही सुहावने, रंगीन  
और अपने लगते हो  
उस शिशु की तरह जिससे  
कई उम्मीदें लगाते हैं माँ-बाप  
उसके परिजन-पर सब पर  
पानी फिर जाता है  
तुम्हारे करीब होने के दौर में  
उम्र बढ़ती है विश्वास घटता है  
अनुभव बढ़ता है  
उम्मीदों पर पानी फिरता है  
हाँ, जब तुम साथ छोड़ जाते हो  
यानी पहन लेते हो  
अतीत का जामा

तब बन जाते हो  
सुनहरी यादगार ।  
शायद इसलिए कि  
जो लौट नहीं सकता  
वह स्मरणीय, स्वर्गीय ही नहीं  
स्वर्गीय बन जाता है  
तुम्हारी छवि भी  
अतीत के हवाले होकर  
जीवन-दर्शन को बदल देती है  
दुःख के साथ सुख और  
फूल के साथ शूल की  
अनिवार्यता को जन्म देती है ।

### तनया

(लड़की की माँ से भावात्मक व मनोवैज्ञानिक प्रश्न)

माँ! शायद मैं  
लड़के की चाह में  
पैदा हुई अनचाही  
उम्मीद हूँ  
जिसने फिर तुममें  
प्रसव-वेदना  
सहन करने की  
शक्ति पैदा की  
तुम घर व  
समाज के आगे  
उतनी लाचार न थीं  
जितनी अपने ही आगे  
पुत्रवती होने का सपना  
जो तुम्हारी दृष्टि में

तुम्हारा मूल्य बढ़ा देते हैं

आप ने मुझे दुलारा  
वात्सल्य के पहले  
चुम्बन का आभास  
दिलाया तो तुमने  
कड़ककर अपने लाड़ से  
मुझे बिगाड़ न देने की  
संकेतात्मक धमकी दी

दादा ने मूल से ब्याज  
ज्यादा प्यारा लगने की  
मानसिकता के आवेग में  
मुझे कन्धों तथा पीठ पर  
सुलाया तो तुमने  
यह कह कर मुझे  
उतरवाया कि कहीं मैं  
सवारी की अभ्यस्त  
न हो जाऊँ

तुम्हारे आत्मजों ने  
जब-जब मेरे  
राखी के सूत्रों अथवा  
दूज के टीकों में  
मेरी याद कर  
आँसू बहाये तो  
तुमने यह कह कर  
सन्तोष कराया कि  
बेटी तो याद की  
मानिंद ही होती है

जब-जब मेरी  
हुड़क<sup>1</sup> और ओलू<sup>2</sup>  
तुम्हारे स्तनों में दूध  
तथा आँखों में  
आँसू बनकर सजल हुई  
तुमने मुझे पराया धन  
मानकर उसे तन-मन की  
प्रकृति मान ली

जब-जब मैंने  
बाबुल के घर को  
छूटने की पीड़ा से देखा

तब-तब तुमने  
मुझे अहसास कराया कि  
वो सराय थी  
जिसमें रहने तथा  
छोड़ने से पहले  
राहगीर को उससे  
जुड़ना नहीं चाहिए  
क्योंकि सराय-सराय  
ही होती है...

तुम्हारा सदियों से होता  
यही व्यवहार देखकर  
लगता है कोई  
अपने ही बाल खींचकर  
उस गुबार से

---

1. गहरी, 2. स्मृति

मुक्त हो जाता है  
जो उसके भीतर  
घुड़-घुड़ा रहा होता है  
बस, इसी प्रवृत्ति के कारण  
मैंने कभी विद्रोह नहीं किया  
फिर जिनके खातिर  
तुम ये सब करती हो  
उन्हीं आत्मजों के  
घर कूचों दड़बों में  
मगन हो जाने पर  
तुम अब अनचाही गुड़िया को  
भावनाओं को संवेदना की  
पाँखुरी समझकर  
जार-जार आँसू बहाती हो  
मैं उनके रेलों की  
सुगम राह से फिर  
तुम्हारी स्मृतियों की  
घेर-घुमेर कोख में  
पहुँच जाती हूँ...  
सब भूल जाती हूँ  
जो शिकायतें मुझे  
तुमसे हैं वही शिकायतें  
मुझे उससे होने की  
संभावनाएँ बलात्  
मुझे खामोश कर देती हैं  
क्योंकि अब मैं भी  
'तुम' बन जाती हूँ।

## वन्दना सालोड़े

### नदी और स्त्री 1

कल-कल करती नदी  
अचानक ठिठक कर  
रुक क्यों गई भला?  
क्या वह नहीं चाहती बहना  
नहीं चाहती अपने घाटों को  
हरा-भरा जीवन देना  
नदी का रवैया पहले  
तो ऐसा न था!  
फिर क्या हुआ?

आकाश छूते विशाल पर्वत  
जो खड़े हैं राह घेरकर  
वे भला क्या रास्ता देंगे  
छरहरी नदी को...?  
ये सब ख्याली बातें हैं  
नदी अब नहीं बहेगी उस तरह  
टूटी गागर नहीं जुड़ती जिस तरह  
जुड़ भी जाए वह गगरी  
जो माटी की नहीं बनी  
धरती की क्षुद्र माटी कुँआरी है  
कुँआरी माटी ने भोगी है  
गठन की तपिश और पीड़ा

अब की टूटी नहीं  
जुड़ेगी गगरी।  
आत्म सम्मान के पानी से  
सानी गई थी गगरी की माटी  
नहीं बहेगी कल-कल करती नदी  
भावुकता के आवेग में!

## नदी और स्त्री 2

चक्र के निर्दिष्ट बिन्दु पर  
आते ही  
नदी बनेगी बाढ़  
और फिर  
बहेगी अपनी ही मर्जी से  
किसी भी दिशा में

कितनी जमीन को बनाएगी बंजर  
इस पर विचार करने फिर  
लौटकर नहीं आएगी नदी  
कितने ही आशाओं-अभिलाषाओं के  
अंकुरों को देगी मसल  
गगनमुखी पेड़-पौधों को उखाड़  
ले जाएगी नदी।  
और डाल देगी ले जाकर  
सागर के अथाह पानी में...

सागर प्रयत्न करके भी  
नहीं खोज पाएगा  
अपनी गहरी झोली में गुम हुए  
जीवन के नव प्रभातों को

काल-सागर नहीं लौटा सकेगा  
सभ्यता और संस्कारों  
के कूलों और मोतियों को  
नहीं पहुँचा पाएगा सभ्यता को  
उसी जगह जहाँ से मानव जाति  
ने अपना गौरवशाली जीवन  
आरंभ किया था  
उन गौरवशाली मुकामों से भी  
फेर लिया है मुँह नदी ने बलात्  
समस्त सृष्टि में  
जीवन रस संचारित  
करने वाली नदी  
हो गई है क्रुद्ध शेरनी  
पाकर लगातार अवहेलना  
जब प्रतिशोध की निर्मम कार्ड ने  
बना लिया है घर  
नदी के लहराते द्रवित सीने पर  
यह धरती हरी-भरी नहीं  
थमी हुई नदी है  
लिजलिजी जहरीली कार्ड  
मखमली कॉलीन का  
कुटिल भ्रम देकर  
सारी हया छोड़ बुलाती है  
शिकार को नदी।

## कितने दिन

उस निचाट सी दोपहर में  
जब डाला डाकिए ने तुम्हारा पत्र  
यंत्रवत् उठाया पढ़ा और रख दिया

मेज की दराज में कागजों की भीड़ में  
 याद आया  
 जब रहते थे हम साथ-साथ  
 हमारे साथ रहने लगी थी नीरसता  
 बिना आमंत्रण के चुपचाप  
 खिंच गई थीं कई दीवारें  
 एक कमरे के ही भीतर  
 उग आया था एक पहाड़  
 दुर्गम।  
 अब अचानक शब्दों की घनिष्ठता  
 क्यों लगने लगी तुम्हें प्रिय  
 क्यों तत्पर हो गए तुम  
 शब्दों के मोती भावों के धागों  
 में चुनकर पिरोने के लिए!  
 संवेदना टूट हो गई थी?  
 या मर गई थी उन दिनों?  
 जब मैं रोती रही थी  
 सब कुछ पाकर भी  
 कुछ खो जाने की रिकित्त  
 के आवेग में और  
 पीठ किए लेते रहे  
 सपनों का आनन्द तुम  
 बर्फ जिसे मैं पूरी शक्ति  
 समेट कर भी हिला न सकी  
 वही कठोर बर्फ एक वर्ष के  
 अन्तराल में कैसे तब्दील हो गई  
 ठंडे पानी के स्रोत में  
 दरार फिर जुड़ गई  
 जाने कितने दिनों के लिए!!

## रमणिका गुप्ता

### उसे रोने की मनाही

अभिजन जमात् में  
 कवि चितेरे शिल्पी  
 कलाकार साहित्यकार  
 सबने  
 औरत को खूब निखारा  
 संजोया-संवारा  
 उसकी गुलामी को कहा  
 मर्यादा  
 हत्या को कुर्बानी  
 मौत को मुक्ति  
 जल जाने को सती  
 सौन्दर्य को 'माया' ठगनी  
 उसकी खुददारी को  
 कुलटा-नटनी-कुटनी  
 और न जाने क्या-क्या  
 कहा?

सम्पदा के बटखरों से  
 हीनता की तराजू पर  
 मर्यादा की डण्डी मार  
 औरत को तौला  
 सतीत्व की कसौटी पर परखा

उसे रोने की मनाही  
हँसना वर्जित  
वह 'आदमी' के दर्जे से वंचित  
बोली तो कौमे लग गये  
पूछी तो  
प्रश्नवाचक तन गये  
महसूसी तो  
विस्मयबोधक उठ गए  
उसने तर्क दिया  
तो पूर्ण विराम के दण्ड अड़ गये  
ज्ञान उसके लिए वर्जित  
किताबें बन्द  
उसकी पहुँच के बाहर  
केवल श्रृंगार की पात्रा  
भोग्या  
देवी रूपा दासी  
न बोलने वाली गुड़िया  
सिर हिलाती कठपुतली  
किसी अदृश्य डोर से बँधी  
पिता-पति-भाई-पुत्र में बँटी  
किसी भी एक के  
खूँटे से बँधी

थिरकती सीमा के भीतर  
ठुमकती घर के अन्दर  
सोती उठती बैठती  
परिधि न लाँघती  
खुद ही अपने गले में  
हाथ और पाँव में  
डालती बंधन

उसी को ही अपना श्रृंगार  
सुहाग-भाग मानती  
पाँव बाँधे  
लड़खड़ाती-लड़खड़ाती  
पार कर गई सदियाँ  
किमोनों से घिरी  
गाउन सम्भालने में व्यस्त  
जकड़ी-अकड़ी औरत  
कमर को करधनी से कसे  
चारदीवारी में कैद  
मीनारों से ताकती  
झरोखों से झाँकती  
जोहती घूँघट से बाट  
बँधी पति के अदृश्य खूँटे के साथ

चुप्पी साधे  
तन्वंगी कोमल मूर्ति-सी  
पल-पल में कुम्हलाती  
बात-बात में लजाती  
शर्माकर भाग जाती  
औरत  
मूल्यां की प्रतिमूर्ति  
मर्यादा का रूपक

तर्क करती  
उन्मुक्त भागती  
हँसती-गाती  
जोर-जोर से चिल्लाती  
जी भर कर  
रोती-हँसती-गाती

बतियाती वाचाल औरत  
मेहनतकश  
मशक्कत के पसीने से लथ-पथ  
आजाद औरत  
'सभ्य औरत' के दायरे से  
बाहर कर दी गयी  
सावित्री और सीता की  
यार्डस्टिक पर  
छोटी  
मर्यादा के पलड़े पर हल्की  
हैली  
संस्कारों की कसौटी पर  
पीतल  
ठहरा दी गई!!

(एक लम्बी कविता का अंश)

## मूर्त नहीं

तुम्हारे मूड में उतरती चढ़ती  
देवी और कुल्टा बनती  
एक बेजान लोंदा  
प्राण-हीन तस्वीर-सी बन कर  
नहीं रह सकती मैं

मैं  
जो स्वयं मूर्त हूँ मूर्त नहीं  
तुम्हारे मन के पैमाने में  
नशे का उफान बनने को  
तैयार नहीं  
तुम्हारे बदलते तेवरों के साथ  
बदलने को तैयार नहीं!

## तुम तो घर बन गये

काश तुम मेरा पड़ाव बन पाते  
तो मैं वहाँ थोड़ी देर रुक  
साँस ले  
फिर अपनी मुहिम पर चल देती  
पर तुम तो  
घर बन गये  
जिसमें मेरा दम घुटने लगा  
खूंट बन गये  
जिसे देख रूह काँपती है मेरी  
इसलिए  
मैं रुकती नहीं कभी।

## मैं जीती या वो

मैं जीती या वो  
कैसे कहूँ?  
मैं उनसे बहुत दूर निकल आई थी  
जो मुझे रोकते  
जो थे मेरे मुकाबिल

मैं अकेली थी  
या थी  
मेरी आकाशी आकांक्षा  
पर वह न थे / जिनसे था मुकाबिला

इसलिए मैं जीती या वो  
या दोनों हारे  
कैसे कहूँ?

## मुक्ति या बन्धन

पाने के साथ  
खोने का तेज अहसास  
खत्म हो गयी  
पाने की खुशी

मुक्ति के साथ  
बंधन का भय  
तो मुक्ति की अनुभूति  
सार्थक  
कुछ मायने उसके  
नहीं तो  
घेरता व्यर्थता-बोध  
जकड़ता  
बिखराव का एहसास  
तब मुक्ति निरर्थक  
और बंधन...?

## मुझे कुछ कहना चाहिए

मैं किसी व्यक्ति को  
किसी चेहरे को  
नहीं जानती नहीं पहचानती  
जानती हूँ भीतर के 'कवि' को  
जिसकी आँखों में हिलकोरती  
प्यार की लहरें छू गईं मुझे  
तो लगा  
कि सब कुछ परिचित है  
सब किसी को जानता सब कोई

चुप बन्द पपड़ाए सिले होंठ  
अन्दर ही अन्दर कुछ फुसफुसाए  
लगा मैंने कुछ सुना है  
जो मैं ही समझ सकती हूँ  
या वह होंठ ही  
जो फुसफुसाए!  
और यह कि  
मुझे सुनना चाहिए था/बहुत पहले  
जिज्ञासा और चाह से भरी पलक  
उठी ऊपर  
तो लगा उन्हें मेरी जरूरत है  
मुझे उनकी  
और यह  
कि मुझे कुछ कहना चाहिए  
और मैंने उस दिन कुछ कहना चाहा  
जैसे ही मैंने कुछ कहना चाहा  
उन्होंने  
जिन्हें वह सुनाना चाहिए था  
स्वतः ही सब सुन भी लिया  
और समझ भी  
जैसे कि सदियों से बतियाते रहे हों हम  
जैसे कि हवा की तरंगों पर  
तैरते रहे हों हम  
शब्द पकड़ते रहे हों हम  
अर्थ टटोलते रहे हों हम  
जैसे कि काल की पदचाप को सुन-सुन  
इकदूजे की बाट जोहते रहे हों हम  
सब जाना-सा पहचाना-सा  
और फिर  
हम प्यार करने लगे



जैसे कि सदियों से  
प्यार करते रहे हों हम!

दो यात्रा गीत :

एनो प्रश्नानिया

एल्प्स की तराई में छोटे-छोटे गाँव  
छोटे-छोटे घर और छोटे-छोटे ठाँव  
प्रश्नों के धूम्र-छल्ले फेंकती आकाश में  
चूल्हे की चिमनियाँ  
वाक्य अक्षर में टांकते बादलों के हाथ!  
रात टोकती बे-आवाज  
पुच्छल तारों की टूटन

टूट का अस्फुट शब्द बन  
'आखर' जब फूटता  
'तो फट जाती पौ'  
रोशनी का सैलाब टूटता  
भोरे-भोरे भिनसरे उनींदी बोझिल आँखों से  
दुनियाँ दुहराती  
'एनो प्रश्नानिया-एनो प्रश्नानिया'  
पवन हहराता-पात थरथराता  
काल को पकड़ कर पूछता  
'कल भोर होगी?'  
शबनम की आँखों में  
सूरज कौंधता!

नोट : 'एनो प्रश्नानिया', यूगोस्लाविया के एक राज्य की भाषा स्लावेनिया का शब्द है।  
इसका अर्थ है 'एक प्रश्न'।

आदमी सोना बोयेगा

अब आलू नहीं  
आदमी सोना बोयेगा यहाँ बस सोना  
खेती नहीं खनून करेगा वह  
घर नहीं भण्डार उठाएगा  
आदमी नहीं मशीन होगा वह

मशीन?  
अरे नहीं  
बड़ी बात है मशीन बनना  
वह तो बनेगा/बस एक पुरजा  
आदमी नाम धातु का  
एक नट/एक वोल्ट  
एक पेचकस/एक रैंच

पहाड़ छटेंगे  
उन पर उगे जंगल कटेंगे  
घाटी पटेगी मिट्टी से पत्थरों से / घटेगा पानी  
झरनों का अनन्त स्रोत कम पड़ जायेगा  
आदमी की प्यास बुझे न बुझे  
सोने की प्यास जरूर बुझाएगा पानी  
खेत पराये हो जाएँगे? होने दो!  
घर कब्र बन जाएँगे? बनने दो!  
आदमी खदानों का मजदूर  
या खानाबदोश  
बे-घरबार बे-जमीन / जरूर बन जायेगा  
तो क्या होगा?  
पोटाशियम साइनेट से सने  
पानी, मिट्टी और हवा में

आदमी-आदमी रह पायगा या नहीं  
कौन जाने?

टोकरी भर आलू छिक्का भर केले  
पेट भर छक कर खाना  
मुश्किल है कहना  
हाँ ग्रामों में तुलता सोना  
किलो में जरूर बदल जायेगा  
यह सच मानो  
तब तक आदमी की रगों में  
लहू नहीं  
पीला-पीला सोने जैसा  
बिजली का करंट दौड़ने लगेगा  
और आदमी को...?

उसका खून/उसका स्वप्न  
उसकी सोच  
गुस्सा-प्रेम-विवेक नफरत-आस्था-तर्क  
लोहे में बदल जायेगा  
खड़ा हो जायेगा  
अयस्क का  
लोहे का रोबोट!

---

नोट : 4-5-93 को फीलीपीन्स में बैगियो की सोना खदानें देखने के बाद।

## सावित्री राजीवन

(मलयालम कविताएँ)

### नियुक्ति

शहर में  
जेल के पहरी के रिक्त पद पर  
नियुक्ति हुई है मेरी।

जमीन और आसमान पर खड़े होकर  
गुरु के साथ बुजुर्गों ने भी  
यही आसीस दी थी  
'कैदियों की  
बुरी तरह बढ़ती हो।'

मैं ग्रीष्म के इस  
बरगद के नीचे खड़ी  
नियत कर रही हूँ  
कैदियों को।  
स्कूल से सीखकर आए  
बच्चों की मानिंद  
मैं सारी भाषाएँ  
भूल गई हूँ।

बारिश के ताल  
और तोरी के राग

दरवाजे के  
बाहर खड़े हैं।  
आँगन पर झरे  
फूल और चिड़ियाँ  
स्मृति के उस पार हैं।  
रहम और याद भरी आँखें  
चश्मे के पीछे नीरस पड़ी हैं।  
अब  
कुछ भी नहीं रह गया है  
उगने को  
नया कुछ उगाना भी नहीं है  
खेतों में।  
शहर में  
जेल के पहरी की रिक्त पद पर  
नियुक्ति हुई है मेरी

टीले पर एक घर  
ईर्ष्या करने के वास्ते एक पड़ोसी  
दुलारने के लिए पिल्ला  
'शो केस' में  
दिल का बगुला  
एकदम नया नमूना।

बच्चों के नन्हें पैर  
और पति के पंखों को  
हिफाजत से रखने  
खरीदा नया रफ्रिजरेटर।  
फिलहाल  
जेल की चाबी रखने  
मैं एक संदूक बना रही हूँ,

शहर में मेरी  
जेल के पहरी के रिक्त पद पर  
नियुक्ति हुई है।

## मूर्ति

मैं  
एक साधन हूँ  
साँस लेने की वजह  
चलती  
चलने की वजह  
लेटती व्यंजनों के साथ  
बातें भी पिरोसती  
घिस-घिस कर  
आहिस्ता-आहिस्ता खत्म होती  
पेचीदा हीन  
रसोई की साधन

कभी मैं  
अपने बच्चों के लिए  
अनगिनत व्यंजन बनाती  
यंत्र सी हूँ  
कभी, एक भौंकती कुत्ती  
जो काटना बिसर गयी है।

चींटी और मधुमक्खी की बानगी  
दिखाकर  
मैंने बच्चों को सिखाया था  
कि  
छोटे भी बड़ों का मालिक बन सकते हैं

इसलिए मेरी आज्ञाओं को  
वे प्रतिकृत करते नहीं  
पर जैसे मन पसंद खिलौने को  
आज्ञा देते हैं  
वैसे हुक्म देते हैं  
और कूद पड़ते हैं  
उस छोटी सी भूमि की ओर  
जो आलाप व विलाप के लायक  
एक शिला सी मण्डप है  
और जिस पर  
आसानी से आजवन मुमकिन है।

मैं  
रसोई से मंच पर आई  
घर की साधन हूँ।  
हर दिन नजर आती हैं  
दस से भी ज्यादा असंग्रहीत  
आज्ञाएँ  
मेरे सिर के ऊपर  
झूल रही हैं।

पड़ोसी की नजर  
पड़ोसिन की हँसी  
अखबारी खबर  
पाठ्य पुस्तक  
उफनते विज्ञापन  
बच्चों के नन्हें  
होंठों तक में  
कतिपय हुक्म हैं  
मेरे लिए।

जैसे चिड़िया-घर की  
जंगली जन्तुओं के  
आज्ञा देते हैं  
वैसे ही  
सलाखों के पीछे खड़े  
दर्शक और पहरी  
मुझ पर हुक्म चलाते हैं  
तार पर झूलती  
चिड़ियों या  
पशुओं की भांति  
मेरी हरकतें  
उन्हें खुशी देती हैं।

मैं  
कभी ललाट पर चन्दन का टीका  
और बालों में तुलसी की बाली  
लगाई देवी हूँ  
तो कभी  
मोहन की लाज से लाचार प्रेमिका  
नहीं तो  
मसीहा की ममतामयी माँ  
काव्यों में  
बयार में झूलती  
पाकी बिखेरती,  
सफेद कमल  
कीर्तनों में,  
दारिका के सिर से लैस  
खून से सराबोर चामुण्डी  
पर मुझे मालूम है।

में  
मंदिर और मूर्ति में  
तब्दील हो गयी  
घर की साधन  
रसोई की लाधन हूँ  
घिस-घिस कर  
खत्म होती एक साधन।

### चश्मा

में  
आँखों के सामने  
नाक के ऊपर  
चश्मा लगाकर ही  
दुनिया देखता हूँ।

पड़ोसी, धोबी और डाकिया को देखने  
देखने,  
सड़क से गुजरते राधा और कृष्ण को  
नहीं तो  
राधा को राधा और कृष्ण को कृष्ण के  
रूप में देखने  
मुझे चश्मे की जरूरत है।

किसी दूसरे से  
मेहमान और दोस्त से भी बोलने के लिए  
मुझे चश्मा चाहिये।

बच्चे, फूल और ईश्वर को  
मैं चश्मे के गिलास से देखता हूँ

अनबोले लफ्ज  
और बिन गाए गीत के लिए भी  
चाहिए मुझे चश्मा।  
बचपन में मुझे चश्मा नहीं था  
जो महान हैं  
सब ऐनकवाले हैं  
या जो ऐनकवाले हैं  
सब महान् हैं  
चश्माहीन मेरा बचपन  
पुस्तक के गाँधी जी  
बेंत से लैस  
गणित का मास्टर  
डाकिया अप्पूजी ही नहीं  
हर उतारे गए ऐनक के पीछे  
एक महान्  
बचपन में मुझे  
चश्मा नहीं था  
लेकिन अब  
ईश्वर और पैगम्बरों के  
परिवेश-सा  
पंडित के गंजे  
और वरेण्य के तोंद-सा  
मेरे लिए भी  
एक चश्मा!!

## श्रीमती मीरा ठाकुर

### धूप से निकला पसीना

अभी मैं मनुष्य खोजती फिर रही हूँ  
मनुष्य के लिए  
नदी के लिए नदी  
आकाश को दो टुकड़े कर  
समा जाऊँ क्या?  
नीली नदी में  
डुबकी लगा कर

दोपहर के गाल पर  
चेहरे पर  
सूरज की चमक है  
इतना लहू है कि  
जैसे गाल दरक जाएँगे  
मेरा बौराया लहू  
रोशनी से अछूती राह  
कहाँ छिपा कर रखा धूप को  
धूप से निकले पसीने को!

### समय

करवट बदल कर समय सरक जाता है  
अनार पक जाता है

खिड़की के सामने लड़की  
विस्मृतियों की गुफाओं को चीर कर  
स्मृतियाँ फूटती हैं  
घड़ियों को पकड़ कर रखने के लिए  
ऐसे अविस्मरणीय क्षण  
कुंवर! सोना नहीं  
तेजा जवान हो गई!

### कबूतर

शुकरेश्वर घाट पर अभी कोई नहीं है  
खामोशी के साथ गुजर रहा है वक्त  
शराई घाट पुल पर चढ़कर  
सूरज ने उतार दिए अपने कपड़े  
निर्वस्त्र शरीर  
जल-जल, पट्-पट्  
वह धो डालेगा  
दिन भर की धूल को  
चील के पंजों से झाड़ते हैं  
परिचित बेआवाज शब्द  
रात के सीने से  
छूती हूँ  
भुवनेश्वरी पहाड़  
चोटी पर खड़े होते ही धीरे-धीरे उतर  
आता है--रात का आसमान  
माटी के सीने में  
किस शिकारी के  
अंधे जाल में फँसकर  
छटपटाते हैं  
सोने के पंछी

मेरे लहू में परकटे  
कबूतर की तरह।

अनुवाद : दिनकर कुमार

तब

अमावस्या की रात में वह मेरी खोदती  
है छाती  
चूहे की तरह चहलकदमी करती है  
शरीर के एक-एक अंग में  
झनझना कर स्तब्ध हो जाती है राह  
बिन बुलाए भोक गूँथती है माला  
तुलसी के डंठल की  
बैरागी गीत से जागता है अर्द्ध वक्षस्थल  
पी...पी...फी...फी।  
जम और चुडैल की चिल्लाहट अतीत के  
अधर में  
धूर्तों का खारिज होता पथ  
पागल होती हवाएँ  
मन की पोटली खोलकर बोध हताहत  
'तलातल घर' के बीच में गुम होता है  
बोध का राजा  
सुता के सिरों को पकड़-पकड़  
अँधेरों का लुटेरा मुख  
प्रतिरात ढंक कर आकाश  
फूलता है धतूरा के फूल  
नीलकंठ होती है हवा  
बुझते हुए दीप की जगह होती है  
खाना खाने की जगह  
सिरहाने से सन्दूक खोलकर

ले जाता है कौन मेरे गुम होने वाले दिन का  
इतिहास  
'दुतुरा' में सुर बजता है  
मिलने वाले सवाल का  
जागती है एक पहेली पेड़ के अँखुओं-सी  
खो जाने वाले दिन की तरह  
आकाश भी हताहत है  
फूटे हुए 'सालिका' के अंडे की तरह  
ईर्जितों का स्वर्णिम हाथ?  
आनन्द से पेड़ चिल्लाते हैं...  
हू...ऊ...रे...रे...ए...  
टूटे कांटे की तरह झनझनाता दिल  
क्रोध से तरबतर  
बादली चींटी की तरह पिरपिराता है  
अविश्रांत पसीने की बूँद  
न थमने वाली इच्छित वर्षा  
बहुत वर्षा  
किसके कंधे की गिरफ्त में छिप गया  
गोल खट्टा जैसा चाँद  
कोई किसी से मिल नहीं सकने वाला  
यह कातिक मास  
चातक की आवाज में यदि  
गूँजता रहे  
मिट्टी...पानी...आकाश और  
जंगलों का एकमात्र दृश्य  
तब?

(अनुवाद : हरभजन कौर)

## इशिगाकी रिन

(दो जापानी कविताएँ)

### आज फिर

दफ्तर के लिए मकानों की कमी बतलाकर  
आये दिन बनाये जा रहे हैं मकान-दर-मकान  
अंधे उद्देश्य की पूर्ति के लिए  
तोक्यो में जगह-जगह बनाये जा रहे हैं  
ताबड़तोड़ मकान  
चारों तरफ फैलता जा रहा है कुहराम  
जिससे घुटन महसूस कर रहे हैं लोग  
आज फिर एक कामगार की मौत  
मौके पर हो गयी...

खौफनाक सीढ़ियों से फिसलने वाला  
सूखे पत्ते की तरह हो जाता है हल्का  
पंखहीन पक्षी की तरह बन जाता है भार  
और आज वह भी धड़ाम से  
गिरते ही चल बसा  
'जब भी बनेंगी गगनचुंबी इमारतें  
तब ऐसी दुर्घटनाएँ स्वाभाविक हैं'  
बातचीत में हम सहज ढंग से बोल जाते हैं  
क्या इस नयी क्रूरता के पक्ष में  
हम हामी भरने के लिए अभिशप्त हैं?

जिसकी आँखों में सूरज है  
और सीने में उमड़ता हुआ सागर  
जिसके स्पंदन से खिलते हैं फूल और पौधे  
आज वही अदृश्य है  
जिन्होंने कभी भी नहीं की कुर्बानी  
उन्हें तो भूल जाना आसान है...  
कहते हैं यह सब नव-निर्माण है  
और ऊँचे उद्देश्य तक पहुँचने की लाचारी  
शायद इसीलिए कहते हैं कुछ लोग  
अमन, चैन के लिए जरूरी हैं हत्याएँ (!)

फुटपाथ पर गड़ी इन सलाखों की तरह  
न जाने कितनी जानें जोड़ दी जाती हैं दीवारों में  
क्या इस तरह रूह, जज्वा और जान की  
हिफाजत होगी?  
क्या बगैर इसके इंसान का काम नहीं चल सकता?  
यदि सचमुच हो ऐसा  
तो कितना उज्ज्वल होगा हमारा भावी इतिहास  
सीढ़ी से फिसलकर  
आज एक और हो गया प्रभु का प्यारा  
उसने जानबूझ कर अपनी  
जान की बाजी नहीं लगाई होगी  
और न इस इमारत के प्रति उसके मन में  
तनिक भी आस्था होगी  
भूख की काई छुड़ाने के लिए  
उसने ऐसा किया होगा...  
उफ! देखते-देखते आज फिर  
एक कामगार का सपना  
सदा के लिए खाक हो गया...



## कड़ाही, बटलोही और अंगीठी

हमेशा से हम औरतों के पास से रहती आयी  
हाथ के मुताबिक सही ढंग की कड़ाही  
चावल पकाकर चमकदार बनाने वाली बटलोही  
और हमें पैदाइशी मिली हैं आग की लपटें  
जहाँ माँ, दादी माँ और उसकी माँ की  
माँ भी बैठती रहीं  
न जाने सबने कितना उंडेला होगा  
इन पात्रों में प्यार और निश्चल नेह  
कभी तो लाल-लाल गाजर  
कभी काला-काला कोनबू (जापानी फल)  
कभी मछली का कीमा  
सुबह दोपहर और शाम  
हर दिन होता रहता  
रसोईघर में भरपूर तैयार  
आस-पास न जाने कितने प्रिय घुटने  
और हाथ करते रहते इन्तजार  
अगर ऐसा नहीं हुआ होता  
कैसे करती कोई औरत  
पकाने का बार-बार जतन  
सदा से करती आयी है वह प्रेम  
और जाने-अनजाने छोड़ती आयी है  
अपना सेवा-चिह्न  
औरत के लिए बदकिस्मती नहीं है खाना पकाना  
हाँ रह जाती है वह अविकसित  
कहाँ मिलता है उसे समुचित  
ज्ञान सम्मान का सुअवसर?  
फिर भी अब देर नहीं है  
हमारे पास है कड़ाही, बटलोही और अंगीठी

जैसे हम पका लेती हैं इन पात्रों में  
मनपसन्द भोजन और स्वादीला गोश्त  
वैसे ही करेंगी अर्जित  
राजनीति, अर्थशास्त्र  
और साहित्य का संपूर्ण ज्ञान  
महज अपनी आन और शान के लिए नहीं  
बल्कि सभी इन्सानों के लिए होगा ज्ञान-दान  
क्योंकि ज्ञान का सार है जन-जन की सेवा ।



---

(इशिगाकी रिन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापानी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने वाली बहुचर्चित कवयित्री हैं। इन्होंने अपने मुल्क और अवाम की ज्वलंत समस्याओं को अपनी रचना का केन्द्रीय विषय बनाया और शोषण तथा दमन के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। उनकी इन कविताओं के अनुवाद में योशिको योगावासान ने मेरी सहायता की है। मैं उनका आभारी हूँ। अनुवादक : जितेन्द्र राठौर)



## रमणिका गुप्ता

**जन्म :** 22 अप्रैल, 1930, सुनाम (पंजाब)

**शिक्षा :** एम.ए., बी.एड.

बिहार/झारखंड की पूर्व विधायक एवं विधान परिषद् की पूर्व सदस्या। कई गैर-सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं से सम्बद्ध तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक कार्यक्रमों में सहभागिता। आदिवासी और दलित महिलाओं-बच्चों के लिए कार्यरत। कई देशों की यात्राएं। विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित।

**प्रकाशित कृतियां :** पातियां प्रेम की, भीड़ सतर में चलने लगी है, तुम कौन, तिल-तिल-नूतन, मैं आजाद हुई हूँ, अब मूरख नहीं बनेंगे हम, भला मैं कैसे मरती, आदिम से आदमी तक, विज्ञापन बनता कवि, कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का, प्रकृति युद्धरत है, पूर्वांचल : एक कविता-यात्रा, खूटे, अब और तब, गीत-अगीत (सभी काव्य-संग्रह); सीता, मौसी (उपन्यास); बहू-जुठाई (कहानी-संग्रह); हादसे (आत्मकथा); लहरों की लय (यात्रा-संस्मरण); मेरे साक्षात्कार, दलित प्रश्न : संवाद और यूटोपिया, समय के साथ, स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, दलित हस्तक्षेप, निज घरे परदेसी, साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे, दलित चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, दक्षिण-वाम के कटघरे और दलित-साहित्य, असम नरसंहार—एक रपट, राष्ट्रीय एकता, विघटन के बीज (गद्य पुस्तकें); 'सृजन के आइने में : मलमूत्र ढोता भारत' के अलावा छः काव्य संग्रह तथा 'भारतीय दलित साहित्य कोश' हिन्दी एवं मराठी सहित चार अन्य दलित कहानी-संग्रह एवं पंद्रह विभिन्न भाषाओं के साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन एवं सम्पादन। शरण कुमार लिंबाले की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' का मराठी से हिंदी में अनुवाद तथा गेल ओमवेट की पुस्तक 'दलित विजन' का हिंदी अनुवाद। इनके उपन्यास मौसी का अनुवाद तेलुगु में 'पिन्नी' नाम से और पंजाबी में 'भासी' नाम से हो चुका है। जहीर गाजीपुरी द्वारा उर्दू में अनूदित इनका कविता-संकलन 'कैसे करोगे तकसीम तवारीख' भी प्रकाशित। इनकी कविताओं का पंजाबी अनुवाद बलवीर चंद्र लांगोवाल ने किया जो 'बागी बोल' नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त आदिवासी, दलित एवं स्त्री मुद्दों पर 28 पुस्तकें संपादित।

**सम्प्रति :** सन् 1985 से युद्धरत आम आदमी (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) का सम्पादन।

**सम्पर्क :** रमणिका फाउंडेशन, ए-221, ग्राउंड फ्लोर, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली-110024

इस कविता संकलन में गत् दो तीन दशकों में हिंदी कविता में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली कवियत्रियों की कविताएँ संकलित की गई हैं। नारी मन की विभिन्न मनःस्थितियाँ इन कविताओं में अभिव्यक्त हुई हैं। इनमें प्रेम, समानाधिकार, विद्रोह तथा प्रकृतिजन्य विषयों पर कविताएँ हैं। आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिवेदन इन कविताओं के माध्यम से व्यंजित हुआ है। पुरुष सत्ता के प्रति आक्रोश भी कुछ कविताओं में मिलेगा, किंतु नारी स्वातंत्र्य के नाम से पश्चिम में जो “वीमन लिब” की बात उठी है वह इन कविताओं में नहीं है। भारतीय नारी स्वतंत्रता का अर्थ आचरणहीनता नहीं मानती। वह माँ, मित्र तथा बहिन की संज्ञा से पहचाना जाना श्रेयस्कर समझती है। वह पुरुष सत्ता का ध्वंस नहीं, उसकी प्रकृति में परिवर्तन की पक्षधर है।

इस संकलन की प्रमुख कवियत्रियाँ हैं : सुमति अव्यर, इन्दु जैन, ग्रेस कुजूर, शशि सहगल, अमरजीत कौर रानीमान, अनुभूति चतुर्वेदी, माया प्रसाद, हेमलता, कल्पना सिंह, मीना भारती, मंजु गुप्ता, शैल प्रिया, अर्चना चतुर्वेदी, कविता सिंह, चम्पा वैद, मणिका मोहिणी, राजी सेठ, सुषम बेदी, नीरा परमार, सुशीला टाकभौर, अन्नपूर्णा श्रीवास्तव, कात्यायनी, मधु शर्मा, रेखा व्यास, वन्दना सलोड़े, रमणिका गुप्ता, सावित्री राजीवन, मीरा ठाकुर, एशिगाकी रिन।

—जगदीश चतुर्वेदी